thearyasamaj.org

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च २०१५

Date of Printing = 05-03-15
प्रकाशन दिनांक= 05-03-15

वर्ष ४४ : अङ्क ५
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : फाल्गुन-चैत्र २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❑ वेदोपदेश २
- ❑ विनम्र श्रद्धांजलि २
- ❑ जन जन तक... 6
- ❑ मिलकर होली मनाओ 8
- ❑ स्वामी दयानन्द का जनकल्याण 10
- ❑ काश ऐसा हो जाता.... 13
- ❑ नवजागरण के पुरोधा 18
- ❑ आर्य्यावर्तीय मतों के.... 20
- ❑ न्यायदर्शन में हेत्वाभास 22
- ❑ हिन्दू धर्म की महानता 25

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

hearyasamaj.org

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = परमेश्वरो भौतिकोऽग्निश्च।।** पूर्वस्य ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः स्वरः। धर्त्रमसीति मध्यस्याच्र्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। विश्वाभ्य इत्युत्तरस्यार्ची पंक्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।।

पुनरग्निशब्देनोक्तावर्थावुपदिश्येते।।

फिर भी अग्नि शब्द से उक्त परमेश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म्– अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चितं स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्।।१८।।

पदार्थः– (अग्ने) परमेश्वर भौतिको वा (ब्रह्म) वेदम् (गृभ्णीष्व) ग्राहय गृह्णाति वा। अत्र **सर्वत्र पक्षे व्यत्ययः। हृग्रहोर्भश्छन्दसीति हकारस्य भकारः।** (धरुणम्) धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च (असि) अस्ति। अत्र पक्षे प्रथमार्थे मध्यमः। (अन्तरिक्षम्) आकाशस्थान् पदार्थान्। अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं वा। अन्तरिक्षं कस्मादन्तरा क्षान्तं भवत्यन्तरेमे इति वा शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा। निरु. 2।10।। (दृंह) दृढीकुरु करोति वा (ब्रह्मवनि) वेदं वनयति तम् (त्वा) त्वाम् (क्षत्रवनि) राज्यं वनयति तम् (सजातवनि) समाना जाता विद्याः समानं जातं राज्यं वा वनयति येन तम् (उपदधामि) धारयामि (धर्त्रम्) धरति यत् येन वा। **वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोमः। स वाभिश्चतसृभिर्दिग्भिः स्तुते तद्यत्तमाह धर्त्रमिति प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। वायुर्वै सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा तदेव तद्रूपमुपदधाति स वै वायुमेव प्रथममुपदधाति वायुमुत्तमं वायुनैव तदेतानि सर्वाणि भूतान्युभयतः परिगृह्णाति।। श. 8।2।1।16।। अनेन प्रमाणेन धर्त्रशब्देन वायुरीश्वरश्च गृह्येते** (असि) अस्ति वा (दिवम्) ज्ञानप्रकाशं सूर्य्यलोकं वा (दृंह) सम्यग्वर्धय, वर्धयति वा (ब्रह्मवनि) सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो वेदस्य विभाजितारम्। ब्रह्माण्डस्य मूर्तद्रव्यस्य प्रकाशकं वा (त्वा) त्वां तं वा (क्षत्रवनि) राजधर्मप्रकाशस्य विभाजितारं राजगुणानां दृष्टान्तेन प्रकाशयितारं वा (सजातवनि) समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् मूर्तान् जगत्स्थान् पदार्थान्वा वनयति=प्रकाशयति तम् (विश्वाभ्यः) सर्वाभ्यः (त्वा) त्वां तं वा (आशाभ्यः) दिगभ्यः। **आशा इति दिङ्नामसु पठितम्।। निघं. 1।6।।** (उपदधामि) उपदधाति वा सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा (चितः) चेतयन्ति=संजानन्ति ये ते चितः। **अत्र वा शर्प्रप्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः, इति वार्तिकेन विसर्जनीयलोपः** (स्थ) भवथ भवन्ति वा (ऊर्ध्वचितः) ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याश्चितानि कपालानि वा (भृगूणाम्) भृज्जन्ति यैस्तेषाम् (अंगिरसाम्) प्राणानामंगाराणां वा। **प्राणो वा अङ्गिराः।। श. 6।5।2।3।। अङ्गारेष्वंगिरा अङ्गारा अंकना अश्चनाः।। निरु 3।17।।** (तपसा) धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन तेजसा वा (तप्यध्वम्) तपन्तु तापयतु वा।। **अयं मंत्र श. 1।2।1।9-13 व्याख्यातः।।18।।**

प्रमाणार्थ–(गृभ्णीष्व) ग्राह्य गृह्णाति वा। यहां सर्वत्र पक्ष में व्यत्यय है तथा 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' इस

thearyasamaj.org

वार्तिक से हकार को भकार आदेश है। **(असि)** अस्ति। यहाँ पक्ष में प्रथम पुरुष के अर्थ में मध्यम पुरुष है। **(अन्तरिक्षम्)** निरुक्त (2।10) में अन्तरिक्ष का अर्थ "द्युलोक और पृथिवी-लोक के मध्य में है एवं पृथिवी तक अवस्थित है, अतः वह अन्तरिक्ष है" किया है। **(धर्त्रम्)** शत0 (8।2।11।16) के अनुसार 'धर्त्रम्' का अर्थ वायु है। चारों दिशाएं उसकी स्तुति करती हैं इसलिए यह चतुष्टोम है। वह वायु इन चारों दिशाओं से स्तुति किया हुआ है इसलिए इसको 'धर्त्र' कहते हैं। 'धर्त्रम्' का अर्थ प्रतिष्ठा है, क्योंकि वायु ही उनके स्वरूप को धारण कर रहा है। वह ऋत्विक् वायु को ही प्रथम धारण करता है और वायु को ही बाद में। और वायु के द्वारा ही वह इन सब भूतों को दोनों ओर से ग्रहण करता है। इस शतपथ के प्रमाण से 'धर्त्र' शब्द से वायु और ईश्वर का ग्रहण होता है। **(आशाभ्यः)** 'आशा' शब्द निघं0 (1।6) में दिशा नामों में पढ़ा है। **(चितस्य)** यहां 'वा शर्प्रप्रकरणे खपरे लोपो वक्तव्यः' इस वार्तिक से विसर्ग का लोप है। **(अंगिरसाम्)** शत0 (6।5।2।3) के अनुसार 'अंगिरा' शब्द का अर्थ प्राण है। निरु. (3।17) के अनुसार 'अंगिरा' का अर्थ 'अंगारों में होने वाला' है। अंगार को अंगार इसलिए कहते हैं क्योंकि वे चमकते हैं और जहाँ गिरते हैं, उसी स्थान को चिन्हित कर देते हैं। इस मन्त्र की व्याख्या शत0 (1।2।1।9-13) में की गई है। 1।18।।

सपदार्थान्वयः – हे अग्ने परमेश्वर! त्वं धरुणं धरति सर्वलोकान् यत्तत् तेजश्च **असि। कृपयाऽस्मत्प्रयुक्तं ब्रह्म** वेदं **गृभ्णीष्व** ग्राह्य, **तथा अस्मास्वन्तरिक्षम्=अक्षयं विज्ञानं** अन्तरात्मस्थमक्षयं ज्ञानं, वा **दृंह=वर्धय** दृढीकुरु।

अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि वेदं वनयति तं **क्षत्रवनि** राज्यं वनयति तं **सजातवनि** समाना जाता विद्या वनयति येन तं **त्वा** त्वाम् **उपदधामि** धारयामि।

हे सर्वधर्तजगदीश्वर। त्वं सर्वेषां लोकानां धर्त्रं धरति यद् येन वा **असि। कृपयाऽस्मासु दिवं=ज्ञानप्रकाशं दृंह** सम्यग्वर्धय **अहं भ्रातृव्यस्य वधाय ब्रह्मवनि** सर्वमनुष्यार्थं ब्रह्मणो=वेदस्य विभाजयितारं **क्षत्रवनि** राजधर्मप्रकाशस्य विभायितारं **सजातवनि** समानान् जातान् वेदान् क्षत्रधर्मान् वनयति प्रकाशयति तं **त्वा=त्वामुपदधाशामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा। **त्वां सर्वव्यापकं ज्ञात्वा विश्वाभ्यः** सर्वाभ्य **आशाभ्यः** दिग्भ्य **उपदधामि** सामीप्ये धारयामि तेन पुष्णामि वा।

हे मनुष्याः। यूयमथैवं विदित्वा चितः चेतयन्ति = संजानन्ति ये ते **ऊर्ध्वचितः (कपालानि)** ऊर्ध्वानुत्कृष्टगुणान् चेतयन्ति ते मनुष्याः **कृत्वा भृगूणाम्** भृज्जन्ति यैस्तेषाम् **अंगिरसाम्** प्राणानां **तपसा** धर्मविद्याऽनुष्ठानेन तापेन **तप्यध्वं=यथा तपन्तु तथा तापयत। इत्येकोऽन्वयः।**

भाषार्थ :– हे **(अग्ने)** परमेश्वर! आप **(धरुणम्)** सब लोकों को धारण करने वाले और तेजःस्वरूप **(असि)** हो, कृपा करके हमारी **(ब्रह्म)** वैदिक स्तुति को **(गृभ्णीष्व)** स्वीकार कीजिये, तथा हमारे **(अन्तरिक्षम्)** अन्तरात्मा में स्थित नाशरहित ज्ञान-विज्ञान को **(दृंह)** बढ़ाइये एवं दृढ़ कीजिये।

मैं **(भ्रातृवयस्य)** शत्रु के **(वधाय)** विनाश के लिए **(ब्रह्मवनि)** वेद को प्रकाशित करने वाले **(क्षत्रवनि)** राज्य को बढ़ाने वाले **(सजातवनि)** सब विद्याओं को समान रूप से सबके लिए प्रदान करने **(त्वाम्)** आपको **(उपदधामि)** धारण करता हूँ।

हे सबको धारण करने वाले जगदीश्वर! आप लोकों के **(धर्त्रम्)** धारण करने वाले **(असि)** हो, कृपा करके हमारे **(दिवम्)** ज्ञान प्रकाश को **(दृंह)** भली भाँति बढ़ाइये। मैं **(भ्रातृव्यस्य)** शत्रु के **(वधाय)** हनन के लिए **(ब्रह्मवनि)** सब मनुष्यों के लिए ब्रह्म=वेद के विभाजक **(क्षत्रवनि)** राजधर्म के प्रकाश के वितरक **(सजातवनि)** सब उत्पन्न हुए वेदों एवं क्षात्र धर्म के प्रकाशक, **(त्वा)** आपको **(उपदधामि)** हृदय में धारण करता हूँ वा आपसे पुष्टि को प्राप्त होता हूँ। आपको सर्वव्यापक समझ कर सब **(आशाभ्यः)** दिशाओं से **(उपदधामि)** आपको अपने हृदय में धारण करता हूँ वा आप से पुष्टि को प्राप्त होता हूँ।

हे मनुष्यो! तुम मुझे इस प्रकार जान कर **(चितः)** चेतन गुण वाले साधारण जनों को **(ऊर्ध्वचितः)** उत्कृष्ट गुण वाले मनुष्य बनाकर **(भृगूणाम्)** दोषों को भस्म करने वाले **(अंगिरसाम्)** प्राणों के **(तपसा)** धर्म एवं विद्या अनुष्ठान रूप तप से **(तप्यध्वम्)** जैसे हो सके वैसे तप करो। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।

thearyasamaj.org

अमर हुतात्मा धर्मवीर पं. लेखराम : विनम्र श्रद्धांजलि

(ओम प्रकाश शास्त्री, चलभाष : 09416988351)

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते,
स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्।।

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन मृत्यु और जीवन प्राप्त नहीं करता? लेकिन संसार में जन्म उसी का सार्थक है, जिसके जन्म से जाति, वंश, समाज और राष्ट्र की उन्नति हुई हो। वस्तुतः जीवन उन्हीं का सार्थक होता है, जिन्होंने अपना जीवन समाज और राष्ट्र को आगे बढ़ाने में लगाया हो। अनन्त काल से अनन्त प्राणी अनन्त योनियों में मृत्यु और जन्म के दौर से गुजर रहे हैं तथा अनन्त काल तक यह दौर चलता रहेगा, लेकिन मनुष्य बनकर संसार में आना उसी का सार्थक है, जिसने समाज को, राष्ट्र को त्याग का, अर्पण और समर्पण का, देशभक्ति का, बलिदान का, सामाजिक निष्ठा का, सत्यता का, निर्भीकता का, ऋषि भक्ति का और परोपकार का पाठ पढ़ाया हो। धर्मवीर पं० लेखराम जी उपर्युक्त समस्त गुणों से ओत-प्रोत थे। आज से लगभग 156 वर्ष पूर्व पाकिस्तान में स्थित पञ्जाब प्रान्त के जनपद झेलम के अन्तर्गत ग्राम सैदपुर में विक्रमी सम्वत् 1915 सन् 1859 चैत्र मास की अष्टमी को आपका जन्म हुआ। आप बाल्यकाल से ही तार्किक बुद्धि के धनी थे। आप (ईश्वर) विश्वासी तो थे, लेकिन अन्धविश्वासी नहीं थे, आप श्रद्धालु भी थे लेकिन अन्ध श्रद्धालु न थे। अपने चाचा को जब एकादशी का व्रत करते देखा तो आपने भी एकादशी का व्रत रखने का संकल्प किया, आपकी छोटी आयु को ध्यान में रखते हुए जब आपकी चाची ने व्रत की कठिनता से अवगत कराते हुए व्रत अनुष्ठान न करने के लिए कहा तो आपने अपनी चाची को कहा- "चाची जी मैंने एकादशी का व्रत रखने का जो संकल्प लिया है उसे मैं यथा सम्भव पूरा करूँगा।" आपने एकादशी के व्रत को पूरी निष्ठा के साथ निभाया। आपके पिता श्री तारक सिंह मेहता निर्भीकता और साहस के धनी थे। बालक लेखराम में भी अपने पिता के उपरोक्त गुण कूट-कूटकर भरे थे। यही कारण है कि वे शिक्षा प्राप्त करने जिस पाठशाला में जाते थे, उसके मौलवी आपके प्रश्नों को सुनकर हैरान रह जाते थे और सोचते थे कि इतनी निर्भकता और साहस के साथ सवाल करके सामने वाले को निरुत्तर करने वाले ऐसे बालक धरा पर विरले ही होते हैं। ऐसे महापुरुषों के व्यक्तित्व के विषय में संस्कृत साहित्य के कवि श्री विशाखदत्त मुद्रा-राक्षस नामक नाटक में लिखते हैं- "निर्व्यूढं प्रतिपन्न वस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रवृतम्" अर्थात् निश्चित किये व्रतों को, संकल्पों को निभाना सज्जनों तथा महापुरुषों का कुलधर्म होता है। आपका व्यक्तित्व उपरोक्त पंक्ति के अनुसार पूर्णरुपेण घटित होता है। आपके चाचाश्री गण्डाराम जी पुलिस में इन्स्पैक्टर थे उन्होंने आपको भी पुलिस में भर्ती करा दिया लेकिन पुलिस में नौकरी करते हुए भी आप की धार्मिक विचारधारा में और वृद्धि हुई, धार्मिक संस्कार भी अधिक जाग्रत हुए और परिणामतः आप श्री कृष्ण की भक्ति में लीन हो गये। उन्हीं दिनों आपको लुधियाना के स्वतन्त्र विचारक एवं लेखक मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थ पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन ग्रन्थों को पढ़कर लेखराम जी के मन में महर्षि दयानन्द सरस्वती से मिलने की व उनके ग्रन्थों को पढ़ने की तथा आर्य समाज को जानने की इतनी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि आखिर एक दिन पुलिस की नौकरी से एक महीने का आपने अवकाश लिया और 10 मई सन् 1880 को अजमेर पहुँचकर सेठ फतहमल जी की वाटिका में ठहरे हुए ऋषि दयानन्द जी के आपने प्रथम और अन्तिम दर्शन किये। स्वामी जी के सान्निध्य को पाकर गदगद हुए पण्डित जी लिखते हैं "स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गये और उनके सत्योपदेश से सब संशय निवृत्त हो गये। अन्त में मुझे आदेश दिया कि 25 वर्ष की आयु

thearyasamaj.org

से पूर्व विवाह न करना। स्वामी जी से भेंट करने के बाद पं० लेखराम जी ने ऋषि-प्रणीत समस्त ग्रन्थों का न केवल गहनता के साथ अध्ययन किया, अपितु अध्ययन करने के बाद उन्होंने यह समझने में देर नहीं लगाई कि समस्त संसार का धर्म एक ही है और वो है- वैदिक धर्म तथा समस्त संसार के धर्मग्रन्थ चारों वेद ही हैं, जिस का स्वामी जी अहर्निश प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। पाठक गण! पं. लेखराम जी पर ऋषि सान्निध्य के बाद ऐसी धुन सवार हुई कि वे भी वेदो के प्रचार-प्रसार में, शास्त्रार्थ में अहर्निश प्रवृत्त हो गये। रात-दिन वेद-प्रचार के कार्य में रत रहने के कारण वे आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी के नाम से विख्यात हो गये। आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी के इस प्रकार धुँआधार प्रचार से विधर्मियों में, पाखण्डियों में हड़कम्प मच गया। आर्य मुसाफिर जी पञ्जाब आर्य प्रतिनिधि सभा से निर्वाह हेतु प्रारम्भ में 25 रुपये और बाद में 30 रुपये मासिक लेकर दिन-रात वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में लगे रहते थे। 33 वर्ष की आयु में आपने कुमारी लक्ष्मी देवी जी के साथ गृहस्थ-जीवन की विधिवत् शुरुआत की। विवाह के दो वर्षो के बाद इन्हें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, जिसका नाम सुखदेव रखा। गृहस्थ जीवन में आने के बाद भी आपके प्रचार कार्य में किसी प्रकार की न तो कमी आयी और न ही किसी प्रकार की शिथिलता आयी; अपितु प्रचार कार्य में ऐसे जुट गये कि घर-गृहस्थी की और पुत्र की तरफ से ध्यान हट गया। आपकी हार्दिक इच्छा होती थी कि मेरी भाँति मेरी पत्नी भी आर्य-समाज की सफल उपदेशिका बने; यही कारण था कि आप इस कार्य में लक्ष्मी देवी जी को अभ्यस्त करने के लिए अपने साथ उनको प्रचार-यात्रा में ले जाते थे। यात्रा की इस थकान को लाडला बेटा सहन नहीं कर पाया और वह रोगग्रस्त हो गया। रुग्णावस्था में जब उसे अपने पिता के सहारे की आवश्यकता थी, तभी उन्हें सन्देश मिला कि पण्डित जी! यदि आप नहीं आए तो यहाँ के बहुत से लोग विधर्मी बन जायेंगे। बस इस सन्देश को पाते ही अपने इकलौते लाडले बेटे सुखदेव को रुग्णावस्था में ही छोड़ कर भोले-भाले लोगों को विधर्मी होने से बचाने के लिए चल पड़े और जब माँ ने कहा कि बेटा तेरा पुत्र बीमार है; तूने अभी उसे ठीक से देखा भी नहीं; तो आपने माँ की बात का उत्तर जिस दृढ़ता से दिया, उसकी मिसाल बहुत कम मिलती हैं। आपने कहा कि माँ यदि मैं एक पुत्र के लिए आज रुक गया तो राष्ट्र के सैकड़ों पुत्र धर्म-भ्रष्ट हो जायेंगे। एक पन्ना धाय थी, जिसने देश-प्रेम पर अपने पुत्र-प्रेम को न्यौछावर कर दिया था या फिर हमारे प्रेरणास्रोत चरित नायक पं० लेखराम जी थे जिन्होंने देश-धर्म प्रेम पर अपने पुत्र प्रेम को वार दिया। आपके विषय में कवि उत्तम चन्द शररजी ने ठीक ही लिखा है-

"पुत्र मोह जिसमें दशरथ को मरते देखा।
पुत्र मोह मानव की कोमलतम रेखा।
जीत न पाये थे प्रताप भी जिस ममता को।
लेखराम तुम जीत गये उस दुर्बलता को।"

आपके धैर्य के सामने, आत्मिक शक्ति के सामने, आपके विवेक के सामने और आपके निस्पृह भाव के सामने पुत्र-वियोग की पीड़ा भी हलकी पड़ गयी। जैसे महर्षि देव दयानन्द विश्वासघात के शिकार हुए, जैसे स्वामी श्रद्धानन्द जी विश्वासघात के शिकार हुए, ठीक उसी प्रकार आप भी विश्वासघात के शिकार हुए। 6 मार्च 1897 का वो दिन पूरे आर्यजगत् के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था, जब एक धर्मान्ध मुसलमान युवक ने विश्वासघात कर आप पर छुरे से हमला कर आपको हमसे सदा-सदा के लिए जुदा कर दिया। आपने जहाँ आने वाली पीढ़ी को वीरता की, धीरता की, धर्मनिष्ठा की, देशप्रेम की, त्याग की शिक्षा दी, वहीं आर्य जगत् के बलिदानी इतिहास में बलिदान का एक और स्वर्णिम अध्याय जोड़ दिया है। शूरधर्म की सही परिभाषा आपके बलिदान ने दी है। रामधारी सिंह दिनकर ठीक ही लिखा है-

शूरधर्म है अभय दहकते, अङ्गारों पर चलना,
शूरधर्म है शाणित असि पर धरकर चरण मचलना।
आग हथेली पर सुलगाकर शिर का हविष् चढ़ाना।
शूरधर्म है जग को अनुपम बलि का पाठ पढ़ाना।

□□

thearyasamaj.org

जन जन तक यह ज्ञान पहुँचाओ

(राजेन्द्र जिज्ञासु, वेद सदन, अबोहर-151116)

गत कुछ मास में देश भर के आर्यसमाज के चुने गये विचारशील विद्वानों, साहित्यकारों, गवेषकों, लेखकों ने इस विनीत को यह प्रबल प्रेरणा दी है कि आपके पास आर्यसमाज के इतिहास की जितनी भी जानकारी है, वह लिपिबद्ध करके समाज को सौंप दे। जीवन पल-पल, क्षण-क्षण बीता जाये। यह सत्य मैं भी जानता हूँ, सो निरन्तर दिये जा रहा हूँ। श्री वैद्यराज महेश भाई भावनगर गुजरात, श्री डॉ० राम प्रकाश जी, श्री तपेन्द्र जी ने सप्रेम ऐसा अनुरोध किया। कभी पूज्य आचार्य उदयवीर जी की कोटि के दार्शनिक वेद शास्त्र मर्मज्ञ ने यही आदेश दिया था। श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी की भी कुछ ऐसी ही आज्ञा थी। स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा कि आपको आर्यसमाज की असंख्य छोटी-बड़ी घटनाओं का तलस्पर्शी और प्रामाणिक ज्ञान है। इसे सुरक्षित कर दो।

जो कुछ इस सेवक से हो सकता है, वह किया जायेगा। इस लेख द्वारा आर्य मात्र से विशेष रूप से युवा पीढ़ी से यह निवेदन करूँगा कि आगे जो घटनाएँ व जानकारी दी जावें, उनको पूरी शक्ति व उत्साह से प्रचारित-प्रसारित कीजिये।

1. आज आर्यसमाज का स्वल्प ज्ञान रखने वाले साधारण वक्ता, लेखक, संन्यासी अपने नाम के साथ जब तक कुछ विशेष अटपटे विशेषण न लगावें, उनकी तृप्ति ही नहीं होती। कोई दूसरा विशेषण लगावे, तो कुछ बात भी है। महात्मा शब्द अपने नाम के साथ लगाना तो कई बाबों के लिए एक अति साधारण सी बात है। श्रीयुत भावेश मेरजा जैसे विचारशील ने एक बाबा को कुछ सीख दी, तो महाराज जी बिगड़ गये। यह सुनकर मुझे एक पुरानी घटना का स्मरण हो आया।

सम्पादक रिफार्मर स्व० सन्तलाल जी विद्यार्थी ने एक बार सुनाया कि पं० चमूपति जी से आपने अपने पत्र के लिए एक लेख देने की विनती की। पण्डित जी ने तत्काल कागज लेकर वहीं लेख लिखकर उन्हें सौंप दिया। शीर्षक के नीचे लिख दिया- "लेखक चमूपति"।

विद्यार्थी जी ने कहा, "पण्डित जी आपने अपने नाम के साथ एम०ए० तो लिखा ही नहीं।" झट से पण्डित जी बोले, "मैं नहीं चाहता कि मेरा लेख कोई इस कारण पढ़े कि मैं एम०ए० पास हूँ। मैं चाहता हूँ कि पाठक इसे इस कारण से पढ़ें कि इसका लेखक चमूपति है।"

इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। यह हमारे लिए एक बहुत बड़ी सीख है। ध्यान रहे, उपरोक्त घटना उस युग की है, जब एम०ए० पास उंगलियों पर गिने जाते थे। विशेषणों के भूखे वक्ता, विद्वान् और महात्मा क्या इससे कुछ सीखेंगे?

2. महर्षि दयानन्द जी की उपस्थिति में मसूदा में राव बहादुर सिंह जी ने ब्यावर के पादरी बिहारीलाल जी से शास्त्रार्थ किया। यह घटना आर्य हिन्दू जाति के इतिहास में एक मील पत्थर है। इससे पहले ब्राह्मण घर में जन्मे विद्वान् ही परस्पर शास्त्रार्थ किया करते थे। सामाजिक न्याय की दुहाई देने वाले और हिन्दुत्व की ढफली बजाने वालों ने ऋषि के इस उपकार की कभी चर्चा की क्या? आर्यो! यह नोट कर लो कि इस देश

thearyasamaj.org

में कोई राजनैतिक दल व हिन्दू संस्था आर्यसमाज और उसके संस्थापक की सेवाओं व बलिदानों के लिये ऋषि का यशोगान व सम्मान नहीं करेगी। अपने इतिहास की हमीं को रक्षा करनी होगी। सब दल हमारा लाभ तो उठाना चाहते हैं और कई संगठन हमें मिटाने पर तुले हुए हैं।

3. दिल्ली में सनातन धर्म के एक नेता और विद्वान् हुए हैं, उनका नाम नामी पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री था। आज सनातन धर्मी व हिन्दुत्ववादी उनका नाम नहीं लेते। मैंने उनके दर्शन भी किये और उन्हें सुना भी। आपने इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख किया है। आपने लिखा है कि उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र का एक चोटी का विद्वान्, ब्राह्मण ईसाई बन गया। वह काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थों पर घूम-घूम कर हिन्दुओं को धर्मच्युत करता रहा। किसी भी तिलकधारी ब्राह्मण को उसका सामना करने का साहस न हुआ।

बाल ब्रह्मचारी यतिराट् वेदवक्ता स्वामी दयानन्द मैदान में उतरा। उसने उस पादरी की बोलती बन्द कर दी। वह पादरी कहीं भी ऋषि दयानन्द के शिष्यों का सामना न कर पाया। यह बात लोकमान्य तिलक जी के गुरु ने भी अपने ढंग से अपने एक लेख में लिखी है। इस ईसाई बन चुके पादरी का नाम था नीलकण्ठ शास्त्री।

4. इस शास्त्री नीलकण्ठ ने ही अन्तिम सिख राजा दलीपसिंह को ईसाई मत में दीक्षित किया था। यह पादरी पंजाब में पहुँचा। सिखों में किसी को हिम्मत न हुई कि महाराजा रणजीत सिंह के लाल को धर्मच्युत करने वाले पादरी को ललकार कर उसका मुँह बन्द करे। और भी बड़े-सिख सरदारों को वह इसाई बना देता, परन्तु ऋषि के शिष्यों ने पंजाब में पादरी की दाल न गलने दी। आर्यो के सामने वह टिक न पाया। ये बातें मैंने सप्रमाण अपने ग्रन्थ सम्पूर्ण जीवन चरित्र ऋषि दयानन्द में लिखी हैं। ऋषि जीवनी के किसी भी लेखक ने ये घटनाएँ नहीं दीं। श्री कुशल देव जी ने तो कुछ-कुछ लिखा है।

5. इस पादरी ने हिन्दू-धर्म के प्रामाणिक ग्रन्थों में कुछ पुस्तकें लिखकर हिन्दुत्व की धज्जियाँ उड़ा दीं। यह साहित्य कोलकाता से छपा। स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन काल में छपा। स्वामी विवेकानन्द या उनके किसी शिष्य ने उसकी किसी पुस्तक का कहीं प्रतिवाद नहीं किया। किया हो तो विश्व हिन्दू परिषद् हमें भी ऐसा साहित्य उपलबध करवाये। हमें यह लिखते हुए गौरव होता है कि पादरी नीलकण्ठ को ऋषि दयानन्द की वैदिक मान्यताओं का खण्डन करने के लिए कुछ भी लिखने का साहस न हुआ।

6. मित्रो! पश्चिम से एक गोरा पादरी कुक भारत पहुँचा। वह धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलता था। सुपठित अंग्रेजी शिक्षित हिन्दू उसके व्याख्यानों से हिल गये। उसने सारे भारत को ईसाई बनाने की घोषणा कर दी। किसी भी हिन्दू सन्त-महन्त को उसे चुनौती देने का साहस न हुआ। महर्षि दयानन्द ने उसे मुम्बई जाकर ललकारा। शास्त्रार्थ की चुनौती दी। पत्र भी लिखा। पादरी मुम्बई छोड़कर पूना भाग गया। ऋषि ने उसे सामने आने को कहा। वह सात समुद्र पार भाग गया। प्यारे ऋषि दयानन्द की दिग्विजय को अशोक सिंघल क्या जाने!

7. राधा स्वामी मत के तीसरे गुरु श्री हजूर जी

thearyasamaj.org

महाराज ने ऋषि दयानन्द की जीवनी लिखी है। विरोध तो किया ही है प्रशंसा भी बहुत की है। आपने लिखा है कि परकीय मतों, विधर्मियों को ललकारना, उनके सामने टिकना, उनसे शास्त्रार्थ करने की हिन्दुओं में तो हिम्मत थी नहीं। जब चाँदापुर उ०प्र० में हिन्दू ईसाई व मुसलमान बनने लगे, तो फिर ऋषि दयानन्द व मुंशी इन्द्रमणि जी को बुलाना पड़ा। ऋषि ने एक सप्ताह तक शास्त्रार्थ करने को कहा। पादरी व मौलवी पाँच दिन तक शास्त्रार्थ करने को तैयार हुए। शास्त्रार्थ हुआ। पादरी पाँच दिन तक भी न टिक पाये। बिना बताये पहले ही भाग खड़े हुए। श्री हजूर जी महाराज ने लिखा है कि इतिहास में पहली बार हिन्दुओं ने विधर्मी मौलवियों व विद्वानों को एक आर्य मुनि महात्मा के सामने दुम दबा कर भागते देखा। अमरीका में दिये गये स्वामी विवेकानन्द के अंग्रेजी भाषण का ढोल पीटने वालों ने हजूर जी महाराज लिखित यह घटना क्या कभी सुनाई? हिन्दू प्रेरणा कहाँ से लें। मैंने यह घटना सप्रमाण ऋषि जीवन में दी है।

8. उन्नीसवीं शताब्दी में कई हिन्दू सुधारक, विचारक, सन्त और महन्त हुए परन्तु देश, धर्म और जाति के लिए बलिदान केवल और केवल महर्षि दयानन्द ने ही दिया। न केवल बलिदान दिया अपितु ऋषि ने बलिदान की एक अखण्ड प्रचण्ड परम्परा चलाई। ऋषि के बाद, वृद्ध, जवान, विद्वान् संन्यासी देश धर्म की बलिवेदी पर प्राण चढ़ाते चले आ रहे हैं। क्या किसी ब्राह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी व रामकृष्ण मिशन के महात्मा ने स्वामी श्रद्धानन्द, सत्यानन्द, कल्याणानन्द और पं० लेखराम श्यामलाल सदृश बलिदान दिया?

(शेष फिर)

❑❑

मिलकर होली पर्व मनाओ

(पं० नन्दलाल निर्भय, भजनोपदेशक, आर्य सदन बहीन जनपद पलवल (हरियाणा)

भारत माँ के पुत्र-पुत्रियो! मिलकर होली-पर्व मनाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

फाल्गुण मास पूर्णिमा के दिन, यह त्यौहार मनाते हैं सब।
हलुआ, पूरी, खीर, पकौड़े, बना-बना कर खाते हैं सब।।
नीला, पीला, हरा, गुलाबी, लाल रंग वर्षाते हैं सब।
यज्ञ, हवन, सत्संग, कीर्तन, करते और कराते हैं सब।।

नशेबाज हैं जो नर-नारी, उनके सब दुर्व्यसन छुड़ाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

thearyasamaj.org

अच्छी तरह समझलो इसको, नव सस्येष्टि यज्ञ है होली।
आर्य पर्व है, वेद पढ़ो तुम, करो न गन्दी कभी ठिठोली।।
दुर्गुण त्यागो, सद्गुण धारो, बोलो सबसे मीठी बोली।
दान करो दानी बन जाओ, युवक-युवतियों की अब टोली।।

अबला, दीन, अनाथ जनों को, खुश होकर के गले लगाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

चोरी करना, जुआ खेलना, बुरे काम माने जाते हैं।।
मांसाहारी और शराबी, कहीं नहीं आदर पाते हैं।।
वेद विरोधी धूर्त नास्तिक, नफरत से देखे जाते हैं।
चरित्रहीन, व्यभिचारी, गुण्डे, मार सदा जग में खाते हैं।।

वैदिक पथ जो भूल गए हैं, उनको वैदिक मार्ग दिखाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

धन, बल पाकर पाप कमाना, वेदों में है बुरा बताया।
खेती अरु व्यापार करो तुम, ऋषियों-मुनियों ने समझाया।।
सत् पथ पर तुम चलो निरन्तर, महर्षि मनु ने है दर्शाया।
स्वार्थवाद में फंसकर हमने, गीता का सन्देश भुलाया।।

सद्ग्रन्थों का पाठ करो नित, मित्रो! जीवन भर सुख पाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

आए हो किसलिए जगत में, हे मित्रो! तुम बैठ विचारो।
परोपकारी बनो साथियो, मानव हो मानवता धारो।।
निद्रा त्यागो, होश सँभालो, राम, कृष्ण के पुत्र दुलारो।
स्वामी दयानन्द बन जाओ, जग का बिगड़ा हाल सुधारो।।

"नन्दलाल निर्भय" दुनियाँ में, अपना नाम अमर कर जाओ।
प्यार-प्रेम का रंग वर्षाओ, पावन वैदिक धर्म निभाओ।।

❑❑

thearyasamaj.org

स्वामी दयानन्द का जनकल्याण हेतु चिन्तन

(डॉ0 विवेक आर्य)

स्वामी दयानंद का जनकल्याण हेतु चिंतन

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में स्वामी दयानंद ने नमक पर अंग्रेज सरकार द्वारा जो कर लगाया जाता था, उसे निर्धन जनता पर अत्याचार मानते हुए हटाने का प्रस्ताव दिया था। स्वामी जी लिखते हैं:-

नोन (नमक) और पौन रोटी में जो कर लिया जाता है, वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता, क्यूंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता, क्यूंकि नोन सबको आवश्यक होता है और वे मजूरी-मेहनत से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं, उनके ऊपर भी यह नोन का कर दण्डतुल्य रहता है। इससे दरिद्रों को क्लेश पहुँचता है। इससे ऐसा होय कि मद्य, अफीम, गांजा, भांग इनके ऊपर दुगना-चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है, क्यूंकि नशादिकों का छूटना ही अच्छा है और जो मद्य आदि बिल्कुल छूट जाएँ तो मनुष्यों का बड़ा भाग्य है, क्यूंकि नशा से किसी का कुछ उपकार नहीं होता। इससे इनके ऊपर ही कर लगाना चाहिए और लवण आदि के ऊपर न चाहिए। (सन्दर्भ-सत्यार्थ-प्रकाश, प्रथम संस्करण, 11 समुल्लास पृष्ठ संख्या 384-85)

कुछ पाठक सोच रहे होंगे कि नमक पर कर साधारण सी बात है एवं स्वामी जी ने इस विषय को इतनी उपयोगिता क्यों दी, जो इसे सत्यार्थ-प्रकाश में सम्मिलित किया। ध्यान दीजिये नमक कर के विरुद्ध महात्मा गाँधी ने कालांतर में दण्डी मार्च के नाम से सम्पूर्ण सत्याग्रह ही किया था। महात्मा गाँधी अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में लिखते हैं कि अंग्रेजों ने केवल नमक से 7 मिलियन पौंड कर 1880 में राजस्व रूप में प्राप्त किया था। शिकागो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के अनुसार अंग्रेज सरकार ने 7.3 करोड़ रुपये का राजस्व नमक कर से प्राप्त किया था। अगर सन् 1947 से 2014 के मध्य मुद्रा स्फीति की दर 6.5 प्रतिशत के हिसाब से मानें तो यह राशि आज के समय में केवल 33,600 करोड़ रुपये बनती है। जो कि आज के समय नमक के माध्यम से प्राप्त होने वाले राजस्व 3.85 करोड़ से केवल 10,000 गुना अधिक है। अब आप स्वयं सोचें कि नमक कर के माध्यम से अंग्रेज सरकार हमारे देश की जनता पर कितना अत्याचार कर रहे थे। यह आँकड़े उन लोगों के मुह पर भी तमाचा है, जो अंग्रेजी राज को भारत के लिए कल्याणकारी मानते हैं एवं अंग्रेज सरकार को शांतिप्रिय मानते हैं। इसलिए स्वामी दयानंद का जनकल्याण हेतु चिंतन भारत को स्वतंत्र करवाने की प्रेरणा अपने लेखन के माध्यम से सदा देता रहा था।

आर्यसमाज की प्रथम महिला प्रचारक-माई भगवती

पंजाब प्रान्त के होशियारपुर नगर में एक कुलीन परिवार की युवा लड़की अपनी तरुणावस्था से ही वैराग्यवती हो गई थी। परिवार का त्याग कर गेरूए वस्त्र धारण कर सदा ईश्वर साधना में वह लीन रहने लगी। गुरुजनों की कृपा से वेदांत के कुछ ग्रंथों का अध्ययन किया। देवयोग से स्वामी दयानंद कृत सत्यार्थ-प्रकाश का प्रथम संस्करण उन्हें पढ़ने हेतु प्राप्त हुआ। सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने से भगवती के विचारों

thearyasamaj.org

में अपूर्व क्रांति हुई और उसका परिणाम यह हुआ कि उनके हृदय में स्वामी दयानंद के प्रति असीम श्रद्धा एवं उनके दर्शन करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। उन्हें जब यह सूचना मिली कि स्वामी दयानंद मुंबई में हैं, तो वह स्वामी जी के दर्शनों हेतु अपने भाई के साथ मुंवई पहुची। स्वामी जी से वार्तालाप करने का माई भगवती को अवसर प्राप्त हुआ। कुछ शंका समाधान के पश्चात् स्वामी जी ने उपदेश दिया। स्त्री समाज में विद्या का बड़ा अभाव है। उनको कर्तव्य-अकर्तव्य का कोई बोध नहीं है। यदि आप पुण्य अर्जन करना चाहती हैं, तो अपने प्रान्त में जाकर अपनी बहनों में विद्या का प्रचार करो। जो कुछ जानती हो, उन्हें सिखाओ। माई भगवती आर्यसमाज की प्रथम महिला प्रचारक हैं। आपने स्वामी जी के आदेश का पालन करते हुए शिक्षा एवं स्त्री समाज के सुधार में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया।

एक कविता—माई भगवती स्वामी जी से क्या प्रेरणा लेकर आई-

तुम जिस पंजाब में रहती हो,
विद्या धूम मचा देना।
कर्तव्य जो भूल गईं अपना,
उनको कर्तव्य सिखा देना
जीवन जो सफल बनाना है,
और तुमने पुण्य कमाना है
तो अण्ड-बण्ड अज्ञान को,
करके खंड-खंड दिखला देना।

आज नारी समाज की सामाजिक प्रगति देखकर स्वामी दयानंद की प्रेरणा एवं माई भगवती का पुरुषार्थ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

शंका- प्राचीन काल में राजा लोग वेश्यावृत्ति में लिप्त थे। हमारे यहाँ पर कामसूत्र एवं खजुराओ की मूर्तियाँ हैं, जो कि हमारी संस्कृति का भाग हैं। वेश्यावृत्ति को सरकारी मान्यता देने से AIDS, STD, ILLEGAL TRAFFICKING आदि की रोकथाम होगी।

समाधान- जो राजा लोग वेश्यावृत्ति में लिप्त थे, वे कोई आदर्श नहीं थे। हमारे आदर्श तो श्री राम हैं, जिन्होंने चरित्रहीन शूर्पनखा का प्रस्ताव अस्वीकार किया।

कुछ लोगों द्वारा खजुराओ की नग्न मूर्तियाँ अथवा वात्सायन के कामसूत्र को भारतीय संस्कृति और परम्परा का नाम दिया जा रहा है, जबकि सत्य यह है कि भारतीय संस्कृति का मूल सन्देश वेदों में वर्णित संयम विज्ञान पर आधार शुद्ध आस्तिक विचारधारा है।

भौतिकवाद अर्थ और काम पर ज्यादा बल देता है, जबकि अध्यात्म धर्म और मुक्ति पर ज्यादा बल देता है। वैदिक जीवन में दोनों का समन्वय है। एक ओर वेदों में पवित्र धनार्जन करने का उपदेश है तो दूसरी ओर उसे श्रेष्ठ कार्यों में दान देने का उपदेश है। एक ओर वेद में भोग केवल और केवल संतान उत्पत्ति के लिए है तो दूसरी तरफ संयम से जीवन को पवित्र बनाये रखने की कामना है। एक ओर वेद में बुद्धि की शांति के लिए धर्म की और दूसरी ओर आत्मा की शांति के लिए मोक्ष (मुक्ति) की कामना है। धर्म का मूल सदाचार है। अतः कहा गया है आचारः परमो धर्मः अर्थात् सदाचार परम धर्म है। आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः अर्थात् दुराचारी व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः वेदों में सदाचार, पाप से बचने, चरित्र-निर्माण, ब्रह्मचर्य आदि पर बहुत बल दिया गया है। जैसे-

यजुर्वेद 4/28- हे ज्ञान स्वरूप प्रभु! मुझे दुश्चरित्र

thearyasamaj.org

या पाप के आचरण से सर्वथा दूर करो तथा मुझे पूर्ण सदाचार में स्थिर करो।

ऋग्वेद 8/48/5-6- वे मुझे चरित्र से भ्रष्ट न होने दें।

यजुर्वेद 3/45- ग्राम, वन, सभा और वैयक्तिक इन्द्रिय-व्यवहार में हमने जो पाप किया है, उसको हम अपने से अब सर्वथा दूर कर देते हैं।

यजुर्वेद 20/15-16- दिन, रात्रि, जागृत और स्वप्न में हमारे अपराध और दुष्ट व्यसन से हमारे अध्यापक, आप्त विद्वान, धार्मिक उपदेश और परमात्मा हमें बचाए।

ऋग्वेद 10/5/6- ऋषियों ने सात मर्यादाएँ बनाई हैं, उनमें से जो एक को भी प्राप्त होता है, वह पापी है। चोरी, व्यभिचार, श्रेष्ठ जनों की हत्या, भ्रूण-हत्या, सुरापान, दुष्ट कर्म को बार-बार करना और पाप करने के बाद छिपाने के लिए झूठ बोलना।

अथर्ववेद 6/45/1- हे मेरे मन के पाप! मुझसे बुरी बातें क्यों करते हो? दूर हटो, मैं तुझे नहीं चाहता।

अथर्ववेद 11/5/10- ब्रह्मचर्य और तप से राजा राष्ट्र की विशेष रक्षा कर सकता है।

अथर्ववेद 11/5/19- देवताओं (श्रेष्ठ पुरुषों) ने ब्रह्मचर्य और तप से मृत्यु (दुःख) को नष्ट कर दिया है।

ऋग्वेद 7/21/5- दुराचारी व्यक्ति कभी भी प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता।

इस प्रकार अनेक वेद मन्त्रों में संयम और सदाचार का उपदेश है।

खजुराओ आदि की व्यभिचार को प्रदर्शित करने वाली मूर्तियाँ, वात्सायन आदि का अश्लील ग्रन्थ एक समय में भारत वर्ष में प्रचलित हुए वाम-मार्ग का परिणाम हैं, जिसके अनुसार मांसाहार, मदिरा एवं व्यभिचार से ईश्वर-प्राप्ति है। कालांतर में वेदों का फिर से प्रचार होने से यह मत समाप्त हो गया पर अभी भी भोगवाद के रूप में हमारे सामने आता रहता है।

यह एक कुतर्क है कि वेश्यावृत्ति को सरकारी मान्यता देने से AIDS आदि बीमारियाँ कम होंगी। एक उदाहरण लीजिये-एक विवाहित व्यक्ति सुबह से शाम तक मजदूरी कर पैसे कमाता है, मेहनत करता है, पसीना बहाता है। अव कल्पना कीजिये, वेश्यावृति को मान्यता मिलने पर वह अपनी बीवी से धंधा करवाएगा और आराम से बैठ कर खायेगा। अब सरकारी कानून के कारण वह ऐसा नहीं कर सकता। एक शराबी बाप अपनी बेटी से अपनी नशे की आवश्यकता को पूरा करने के लिए धंधा करवाएगा। कल्पना करो, बाद में समाज में इससे कितना व्यभिचार फैलेगा। एक काल में उत्तरांचल की पहाड़ी जातियों में अनेक परिवारों में ऐसी कुप्रथा थी। परिवार की महिलाओं से धंधा करवाया जाता था। लाला लाजपत राय जैसे समाज-सुधारकों ने उसे रुकवाया था। आज आप सामाजिक प्रगति के नाम पर फिर से समाज को उसी गर्त में क्यों धकेलना चाहते हैं?

HIV आदि की रोकथाम के नाम पर विदेशी शक्तियाँ हमारे देश को भोगवाद के रूप में मानसिक गुलाम बनाना चाहती हैं, जिससे उनके लिए भारत एक बड़े उपभोक्ता बाजार के रूप में बना रहे एवं यहाँ के लोग आर्थिक, मानसिक, समाजिक गुलाम बनकर सदा पीड़ित रहें। वैदिक विचारधारा इस गुलामी की सबसे बड़ी शत्रु है। इसीलिए एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत उसे मिटाने का यह एक कुत्सित प्रयास है। हमारा समाज, हमारी परम्परा और संस्कृति चरित्रहीनता नहीं अपितु ब्रह्मचर्य एवं संयम हैं।

❑❑

thearyasamaj.org

काश! ऐसा हो जाता! (1)

(राजेशार्य आट्टा, 1166, कच्चा किला, साढौरा (यमुनानगर)

प्रिय पाठकवृन्द! इतिहास पढ़ने-सुनने का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं होता, अपितु अतीत के अच्छे-बुरे पक्षों पर चिन्तन कर गौरवशाली भविष्य का निर्माण करना भी होता है। अपने देश के इतिहास का अध्ययन करने पर हमें यह निष्कर्ष मिलता है कि हमने अतीत से कुछ नहीं सीखा। इसी कारण घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रही। कई बार परम्परा की लकीर को पीटने के लिए भी हम घटनाओं की पुनरावृत्ति करते रहते हैं और धर्म व समाज-विरोधी होते हुए भी उन कार्यों का औचित्य सिद्ध करते रहते हैं। इसका कारण आदर्श पुरुष द्वारा उठाया गया कोई अनुचित कदम होता है- जिसका उसके अनुयायियों द्वारा उसे पूर्ण पुरुष (सर्वज्ञ व सर्वथा निर्भ्रान्त) मानने का अन्धविश्वास है। उन महापुरुषों के व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए भी मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि काश! उन्होंने ऐसा न करके कुछ और किया होता, तो अतीत के साथ हमारा भविष्य भी बदल गया होता।

एक बार वैदिक विद्वान् श्री पं० सत्यानन्द वेदवागीश द्वारा लिखित पुस्तक 'क्या महाभारत युद्ध रोका नहीं जा सकता था?' पढ़ते देखकर मुझसे किसी सज्जन ने कहा- "यह तो सब दिमागी कसरत है, इतिहास में 'यदि' 'परन्तु' नहीं चलते।" मैंने कहा- यह तो ठीक है कि महाभारत युद्ध पाँच हजार वर्ष पूर्व हो चुका है और यह उसका इतिहास है, पर उसके कारणों पर विचार कर उनके विपरीत कल्पना करने की मनाही तो नहीं होनी चाहिए, ताकि भविष्य में ऐसी परिस्थिति आने पर विपरीत कारणों का प्रयोग किया जा सके।

भाग्य को प्राथमिकता देकर पुरुषार्थ की उपेक्षा करने वाले लोग हमारे जीवन में घटने वाली हर घटना को पूर्व निर्धारित मानकर निराशा का सन्देश देते रहते हैं। जबकि इतिहास का अध्ययन करने वाले विद्वान् बताते हैं कि हमें पहले पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिए, ताकि भविष्य में विरीत परिणाम आने पर कोई हमें दोष न दे। कभी एक कहानी सुनी थी-

किसी जंगल में आग लग गई। एक चिड़िया अपनी चोंच में पानी भर-भर कर आग पर डालने लगी। उसे बार-बार ऐसा करते देखकर किसी राहगीर ने कहा- चिड़िया, तेरा परिश्रम तो व्यर्थ है। इससे वन की आग नहीं बुझेगी। यह सुनकर चिड़िया बोली- यह तो मुझे भी पता है, पर जब इतिहास लिखा जाएगा, तब मेरा नाम कम से कम आग लगाने वालों में तो नहीं होगा।

व्यक्ति जितना बड़ा होता है, उसके अच्छे-बुरे कार्य का प्रभाव भी उतना ही व्यापक होता है। महात्मा बुद्ध ने जीवन भर अहिंसा का प्रचार किया, पर अंतिम समय में भिक्षा में मिले सूअर के माँस को खा लिया, जो उनकी मृत्यु का कारण बना। अन्धविश्वासी शिष्यों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए माँसाहार को अपना लिया; उसके कारण हुई उनकी मृत्यु से कोई शिक्षा नहीं ली। आज संसार के बहुत से देशों में बौद्ध-मत के अनुयायी हैं, लगभग सारे ही माँसाहारी हैं और तर्क यह देते हैं कि हम स्वयं हत्या नहीं करते। क्या ही अच्छा होता यदि महात्मा बुद्ध ने माँस भेंट करने वाले चन्दू लुहार की भिक्षा लौटा दी होती और उसे भी अहिंसा व्रत का उपदेश दिया होता।

महात्मा बुद्ध की तरह महावीर स्वामी ने भी राज्य त्याग कर वन में कठोर तपस्या की। उस अवस्था में उनके पास वस्त्रों का अभाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, पर उनकी शिष्य मण्डली बढ़ने के बाद सामाजिक व्यवस्था के अनुसार उन्हें कम या अधिक वस्त्र पहनने चाहिए थे, जैसा महर्षि दयानन्द ने किया,

thearyasamaj.org

पर उन्होंने कोई वस्त्र नहीं पहना। उनकी नकल पर आज भी जैन महात्मा (दिगम्बर) बाजारों में नंगे घूमते हैं। तर्क यह देते हैं कि वस्त्र पहनने से मोक्ष नहीं होगा। फिर श्वेताम्बर साधु और साध्वियों का क्या होगा? मोक्ष का तो पता नहीं होगा या नहीं, पर नंगे महात्माओं को देखकर युवक-युवतियों में जो भाव पैदा होते हैं, उनसे समाज का विनाश अवश्य होगा। जब कम दिखने पर चश्मा लगाते हैं, बीमार होने पर दवाई खाते हैं, भूख लगने पर शरीर को चलाने के लिए आहार लेते हैं, तो समाज की भलाई के लिए वस्त्र भी पहन लेने चाहिए। जैसे, एक कहानी पढ़ी थी-

एक अन्धा आदमी रात को हाथ में लालटेन लेकर जा रहा था। किसी ने उसे देखा और पूछा कि आपको इस लालटेन का क्या लाभ है? आपके लिए तो दिन-रात एक जैसे हैं। यह सुनकर अन्धे आदमी ने कहा- "यह लालटेन तुम्हारे लिए हैं, कहीं तुम मुझसे न टकरा जाओ।"

हो सकता है कि दिगम्बर संत आत्मा के स्तर पर जीते हों, पर जिस समाज में वे रहते हैं, वह तो वासनारहित नहीं है। अतः अपने लिए नहीं तो समाज के लिए ही सही, उचित वस्त्र पहनना अनुचित नहीं है। काश! महावीर स्वामी ने भी बाद में वस्त्र पहने होते!

स्वार्थी पंडितों की करतूत के कारण हिन्दू समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अछूत कहलाया और अपने ही धर्म के तथाकथित ऊँचे (अभिमानी व अज्ञानी) लोगों द्वारा अपमान व घृणा की दृष्टि से देखा गया। आर्य सामज ने उस झूठे जातिवाद के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। बाद में डॉ० अम्बेडकर दलितों के नेता बन गये। अछूतों (दलितों) के प्रति दुर्व्यवहार के लिए डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति को दोषी माना और 25 दिसम्बर 1927 को सार्वजनिक रूप से उन्होंने मनुस्मृति को जलाया। उन्हीं की नकल पर उनके अनुयायी आज भी हर वर्ष 25 दिसम्बर को मनुस्मृति को जलाते हैं। ऐसा करके क्या वे मनु की विचारधारा को मिटा सकेंगे और समाज में ऊँचा उठ जाएंगे? इन्हें नहीं भूलना चाहिए कि मुसलमानों ने तो इस देश के पुस्तकालय तक जला दिये थे, फिर भी यहाँ की प्राचीन संस्कृति जीवित रही। वास्तव में वैचारिक आन्दोलन इस बात को लेकर चलना चाहिए कि मनुस्मृति के प्रक्षिप्त अंशों को निकाला जाये या पाद टिप्पणी सहित प्रकाशित किया जाये। राजनैतिक शैली में आन्दोलन, प्रदर्शन या विरोध प्रकट करना प्रतिक्रिया को जन्म देगा न कि उससे सुधार होगा। सोचिये, देश में डॉ० अम्बेडकर की हजारों मूर्तियाँ हैं और हम मनु की एक मूर्ति भी सहन नहीं कर पा रहे हैं।

इन उपर्युक्त घटनाओं में हम आदर्श पुरुषों को दोषी नहीं मानते, क्योंकि उन्होंने अपने अनुयायियों को ऐसा (जो परिस्थितिवश उन्होंने किया था) करने के लिए नहीं कहा। उनके अनुयायी अपनी आस्था (या स्वार्थ) से ऐसा करते हैं। आज समय बहुत आगे जा चुका है और हम वहीं ठहरे हुए हैं। क्या समाज व राष्ट्र के भले के लिए हम अपने चिन्तन को समय की गति के साथ मिलाने की उदारता दिखाएंगे?

श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ रास रचाने वाला बताकर स्वयं औरतों के साथ नाचने वाले व शिवजी को भांग पीने वाला प्रचारित कर अपनी वासना पूरी करने वाले तथाकथित भक्तों से भी मेरा निवेदन है कि वे अपना तथा दूसरों (भोले भक्तों) का जीवन नष्ट न करें। यद्यपि किसी प्रामाणिक ग्रन्थ से उन महापुरुषों पर ये लांछन सिद्ध नहीं होते, तथापि समाज के उत्थान के लिए नई या पुरानी हानिकारक रूढ़ि का त्याग करना ही उचित है।

प्रिय पाठकवृन्द! अब हम इतिहास की कुछ ऐसी घटनाएँ देखते हैं, जिनमें विद्वान्, बुद्धिमान, शूरवीर व उदार होकर भी उन घटनाओं के नायकों ने अपने विचित्र निर्णय से स्वर्णिम बनने जा रहे इतिहास को मिट्टी में मिला दिया। इतिहासवेत्ता इसके लिए परिस्थितियों को भी दोषी ठहरा सकते हैं और भाग्यवादी

thearyasamaj.org

लोग भाग्य को भी, पर हमारा तो यही निवेदन है कि किसी को दोष न देकर हमें भविष्य में ऐसी गलतियों से बचने का प्रयास करना चाहिये।

पृथ्वीराज चौहान की पराजय से भारत की गुलामी का इतिहास प्रारम्भ होता है। समाज में प्रचलित (सम्भवतः पृथ्वीराज रासो के कारण) मान्यता के कारण ऐसा माना जाता है कि चौहान वीर ने मुहम्मद गोरी को 17 बार (या 21 बार) हराया और हर बार क्षमा कर दिया। यदि यह सत्य है, तो इस आधार पर चौहान वीर को विवेकशील व राजनीतिज्ञ नहीं माना जा सकता। यदि रासो को प्रमाण मानें, तो चौहान वीर की वीरता अधिक विवाह करने और विवाह (अपहरण) हेतु युद्ध करने में ही प्रदर्शित होती थी। उसका सबसे अधिक चर्चित विवाह था- संयोगिता अपहरण। यदि यह सत्य घटना है और तराइन की पहली लड़ाई (1191 ई.) के बाद की है, तब तो चौहान वीर बिल्कुल मूर्ख (या स्वार्थी) सिद्ध होता है क्योंकि भारत से लुट-पिटकर गजनी लोटने पर मुहम्मद गौरी कभी सुख से नहीं सोया और सदैव चिन्ता तथा वेदना में लिप्त रहा। इस हार का बदला लेने के लिए उसने भीषण तैयारियाँ कीं और जब वे पूरी हो गयीं, तो अगले ही वर्ष विशाल सेना लेकर पुनः उसी तराइन के मैदान में आ डटा।

जबकि इधर पृथ्वीराज चौहान (प्रचलित मान्यता के अनुसार) 25 वर्ष की अवस्था में 16वीं रानी संयोगिता को पाने के लिए अपना धन और बल (सेना) नष्ट करने में लग गया। अपनी विलासिता के कारण उसने अपने चारों ओर शत्रुओं की संख्या बढ़ाई। इतिहासकार वर्णन करते हैं कि तराइन की दूसरी लड़ाई से पूर्व मुहम्मद गौरी ने चौहान वीर के पास सन्देश भेजा कि वह तो अपने भाई का आदेश मानकर लड़ने आया है, अतः उससे पुनः दूसरा आदेश पाने की प्रतीक्षा करेगा और तब तक युद्ध नहीं करेगा। बस इतने से ही पृथ्वीराज ने युद्ध-विराम मान लिया और वह राग -रंग में मस्त हो गया व मदिरापान में डूब गया। उसकी सारी सेना भी निश्चिन्त हो गई। रात में गोरी ने अचानक हमला बोल दिया और नींद में हड़बड़ाता चौहान वीर बंदी बना लिया गया व मार दिया गया।

सोचिये, नौजवान के कंधों पर ही घर की रक्षा का भार होता है, जब वही नशे में पागल होकर लड़खड़ाएगा, तो चोर-डाकुओं से घर की रक्षा कौन करेगा, यदि चौहान वीर ने चाणक्य के वाक्य- 'अयं व्यायाम कालः नोत्सवकालः' को याद रखा होता, तो आज हमें उसे अंतिम हिन्दू सम्राट् नहीं कहना पड़ता।

पृथ्वीराज चौहान की पराजय ने दिल्ली की गद्दी पर कई शताब्दियों के लिए विदेशी विधर्मियों का अधिकार करा दिया। इस लम्बे काल में भारत में बहुत से वीर योद्धा हुए, पर दिल्ली के सिंहासन को पाने का साहस दिखाने वाला वीर केवल हेमचन्द्र विक्रमादित्य ही हुआ। उसके शौर्य और पराक्रम को स्मरण कर हमारा सीना गर्व से फूल जाता है। सामान्य से प्रयास में ही आगरा व दिल्ली के मुगल सेनापतियों को मार भगाकर उसने 7 अक्तूबर 1556 को सिंहासन पर बैठ 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। अकबर उस समय अपने संरक्षक बैरम खाँ के साथ कलानौर (पंजाब) में था। दिल्ली और आगरा के पतन के समाचार सुनकर मुगल सहम गये और उन्होंने अकबर को काबुल चलने की सलाह दी। इतने में आगरा, दिल्ली और सम्भल के भगोड़े सेनापति तरदीबेग आदि भी पहुँच गये और उन्होंने भी काबुल लौट चलने की सलाह दी। क्या ही अच्छा होता यदि हेमचन्द्र दिल्ली में न बैठकर उनकी भागती हुई सेना का पीछा करता और उन्हें भारत से बाहर खदेड़ देता।

जब तक हेमचन्द्र सम्भवतः राजतिलक की खुशियाँ ही मना रहे थे कि बैरम खाँ मुगल सेना को एकत्रित करके पानीपत के मैदान में आ डटा। (5 नवम्बर 1556 के दिन बैरम खाँ अकबर के साथ युद्ध क्षेत्र से 8 मील दूर अपने शिविर में रहा, ताकि यदि सेना पराजित हो,

thearyasamaj.org

तो वहाँ से तेजी के साथ काबुल की तरफ पलायन किया जा सके। इस समय उसकी सेना का नेतृत्व तीन सेनानायकों के हाथ में था।) इस युद्ध के परिणामस्वरूप 300 वर्ष के लिए भारत का इतिहास मुगलों के नाम हो गया और वीर हेमचन्द्र का इतिहास में, नाम भी गुमनाम (हेमू) हो गया। उसका सिर काटकर काबुल भेज दिया गया।

जब शिवाजी, राणा राजसिंह, गोकुल, राजाराम, छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह आदि वीरों के प्रचण्ड प्रहार से पताड़ित होकर मुगल सत्ता का नशा कुछ ढीला हुआ, तभी उस पर एक और प्रबल प्रहार किया वीतराग संत वीर वैरागी बन्दा ने। गुरु गोविन्द सिंह के मुख से हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों को सुनकर उनके प्रतिकार के लिए वैरागी साधना गुफा को छोड़कर युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा। सिक्ख वीरों के सहयोग से अत्याचारी शासन को नष्ट करने लगा। अत्याचारियों के प्रति दोगुने अत्याचार करने लगा। अम्बाला, कैथल, कुंजपुरा साढौरा आदि को जीतकर शीघ्र उसी सरहिन्द पर चढ़ाई कर दी, जहाँ गुरु गोविन्द के दो नन्हे धर्मवीर दीवार में चिनवा कर मार दिये गये थे। उस अत्याचार को याद कर वहाँ के सूबेदार वजीर खाँ को पकड़ जिन्दा आग में फैंक दिया। इसके बाद मालेरकोटला, होशियारपुर, व्यार और रावी का प्रदेश भी जीत लिया। लगभग 2 वर्ष (1708-09 ई०) में यमुना और सतलुज नदियों के बीच का इलाका वैरागी के पाँव तले आ गया।

बहादुरशाह वैरागी की इस वीरता से हैरान और परेशान होकर चल बसा (1712 ई०)। बाद में बादशाह फर्रुखसियर (1713-19 ई०) ने भी वैरागी को नष्ट करना चाहा, पर बल प्रयोग व्यर्थ जानकर उसने कूटनीति से काम लिया। उसने अपने हिन्दू मंत्री रामदयाल को गुरु गोविन्द सिंह की रानियों माता सुन्दरी व माता साहब देवी (जिनके बेटै दीवार में चिने गये थे) के पास भेजा और कहलवाया कि बादशाह आपको जागीर देना चाहता है, आप वैरागी को कहकर लूटमार बन्द करवा दो।' उनके पास रहने वाले भाई मानसिंह व सदकी सिंह ने माताओं को बहुत समझाया कि बादशाह की चालों में न आइये, पर माता अपने हठ पर अड़ गई और वैरागी को जागीर स्वीकार करने व लूटमार बंद करने के लिए पत्र लिख दिया।

पत्र पढ़कर वैरागी को गुस्सा आया और उसने इस आदेश को मूर्खतापूर्ण कहकर उत्तर लिखा- "आपका मुझे ऐसा पत्र लिखना व्यर्थ है। मुझ पर आपका क्या अधिकार है....। मैंने अपनी तलवार और धनुषबाण से इतना प्रदेश जीता है। इन्हीं की शक्ति से लाहौर और दिल्ली जीतूँगा।... आप भले ही भूल जायें, किन्तु जब तक हमारे हृदयों में गुरु-पुत्रों की स्मृति शेष है, हम अपने निश्चय को कभी निर्बल न होने देंगे।"

इस उत्तर को अपना अपमान समझकर दोनों माताओं ने सिक्ख सरदारों व पंथ को पत्र लिख भेजे कि कोई भी गुरु गोविन्द का सिक्ख वैरागी का साथ न दे, क्योंकि वह अपने आपको सिक्ख नहीं मानता। इस आदेश से सिक्खों में खलबली मच गई। बहुत से सिक्खों ने वैरागी का अपमान किया और उससे अलग हो गये। वैरागी ने पुनः सेना बनाई और नैनाकोट के पास मुगल सेना को मात दी। लाहौर का सूबा असलम खाँ बटाला के पास पराजित हुआ।

फर्रुखसियर ने पंजाब के सिक्ख खालसा को प्रलोभन देकर लाहौर की सेना में मिला लिया। फिर यही तत्तखालसा सेना वैरागी के विरुद्ध खड़ी की गई, जिसे देखकर वैरागी ठिठक गया और अपनों की मूर्खता से अपने 740 साथियों सहित बन्दी बनाकर बेरहमी से कत्ल कर दिया गया। काश! गुरु माताएँ भी अपने पुत्रों की हत्या और वैरागी के निःस्वार्थ उपकार का स्मरण रखतीं, तो तुच्छ राजनीति हमें हिन्दू-सिक्ख में न बाँट पाती और राष्ट्र में अलगाववादी स्वर नहीं उठता।

हिन्दू वीरों के प्रबल प्रतिकार के परिणामस्वरूप

thearyasamaj.org

ऐसा भी समय आया कि दिल्ली का बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला क्रूर लुटेरे नादिरशाह के कत्लेआम से अपनी प्रजा को नहीं बचा पाया। सम्भतः अपनी जान भी उसने नादिरशाह को तख्ते ताऊस, कोहिनूर हीरा व सत्तर करोड़ रुपये देकर बचाई थी। उसके बेटे अहमदशाह ने तो अगले लुटेरे अहमदशाह अब्दाली को पंजाब का क्षेत्र ही दे दिया। इस प्रकार जो लुटेरा अब तक केवल पंजाब पर ही धावे बोलता था, अब दिल्ली की गद्‌दी पर बैठने के सपने देखने लगा। उसके साहस को बढ़ाया रुहेलखंड के नजीबुद्दौला के निमन्त्रण ने। 1757 ई० में सचमुच वह आया, दिल्ली पर कहर ढाया; आलमगीर द्वितीय को बादशाह व नजीबुद्दौला को मीर बख्शी (अपना प्रतिनिधि) बनाया और 12 करोड़ की लूट के साथ काबुल चला गया।

जब यह सब चल रहा था, तब मराठे अपने गृह-युद्ध में ही उलझे हुए थे। वहाँ से फुर्सत मिली, तो राजस्थान के राजपूतों और भरतपुर के जाटों से उलझ गये। अर्थात् जिनके सहयोग से विदेशी शत्रु को मार भगाया जाता, उन्हीं को शत्रु बना लिया। अब्दाली के जाते ही मराठों ने दिल्ली को जीत लिया और नजीबुद्दौला को उसके पद से हटा दिया। आक्रमण से पूर्व नजीबुद्दौला ने मल्हार-राव होल्कर की शरण लेकर व भारी रिश्वत देकर बन्दी जीवन से मुक्ति पा ली। बाद में विद्रोह कर अब्दाली से सहायता की अपील की। लगभग 2 वर्ष बाद अब्दाली पुनः पंजाब पर चढ़ आया।

पेशवा के आदेश से सदाशिव राव भाऊ विशाल सेना के साथ दिल्ली की ओर चला (14 मार्च 1760)। चम्बल पार करने से पूर्व उसने राजस्थान के सरदारों, अवध के शुजाउद्दौला, महाराजा सूरजमल आदि को पत्र लिखे कि वे इस लड़ाई को देश की लड़ाई समझकर विदेशी अब्दाली को सिन्धु पार खदेड़ने में उसकी सहायता करें। राजस्थान वाले सिन्धिया और होल्कर के अत्याचार नहीं भूल पाये, अतः तटस्थ रहे। शुजाउद्दौला मराठों की सहायता के लिए तैयार हो गया, पर उसे नजीबुद्दौला ने धर्म के नाम पर अब्दाली के साथ मिला लिया। केवल भरतपुर के महाराजा सूरजमल मराठों की सहायता के लिए पहुँचे, पर वे युद्ध से पूर्व ही वापस चले गये, क्योंकि उन्होंने भाऊ को सलाह दी थी कि वह युद्ध सामग्री, तोपखाना और स्त्रियों को भरतपुर में सुरक्षित छोड़कर मराठों की पुरानी छापामार नीति को अपनाये और अब्दाली की रसद रोक दे।' भाऊ ने उनकी सलाह नहीं मानी, तो वे चले गये।

भाऊ पास में आये हुए सूरजमल को भी साथ नहीं रख पाया, जबकि देशद्रोही नजीबुद्दौला ने एक अफवाह कि भाऊ विश्वासराव को दिल्ली का सम्राट बनाकर सारे देश पर मराठा-साम्राज्य स्थापित करना चाहता है, फैलाकर अधिकतर मुस्लिमों को मजहब के नाम पर अबदाली के पक्ष में कर लिया।

काश! हममें देश व धर्म की रक्षा के लिए व्यक्तिगत अहं व मान-अपमान को भुलाने का भाव जगता! यदि भाऊ ने सूरजमल की सलाह मानी होती; यदि भाऊ ने ढाई महीने (अगस्त से अक्तूबर 1760 ई.) दिल्ली में व्यर्थ न गँवाते हुए अब्दाली पर सीधा आक्रमण किया होता, तो पानीपत के मैदान में हजारों मराठे सैनिकों का रक्त व्यर्थ न बहता। महाराजा सूरजमल की उपस्थिति भी अब्दाली को भगाने के लिए पर्याप्त होती क्योंकि अकेले मराठों के सामने भी वह सन्धि करने के लिए तैयार हो गया था। नजीबुद्दौला के हिन्दुत्व विद्वेष ने उसके साहस को बढ़ाया था। काश! हम राजपूत, ब्राह्मण, जाट, मराठे या और कुछ न होकर केवल हिन्दू (आर्य) होते, तो आज भाषा-प्रान्त के नाम पर समाज में जहर घोलने वालों की 'राज'नीति नहीं चलती।

(विदेशी आक्रमणकारियों की क्रूरता, हिन्दुओं की वीरता व मूर्खता जानने के लिए मेरी लिखी पुस्तक ''हिन्दू इतिहास-वीरों की दास्तान'' अवश्य पढ़ें)

❑❑

thearyasamaj.org

नवजागरण के पुरोधा ऋषि दयानन्द

(डॉ० मंजुलता विद्यार्थी, अध्यक्षा आर्यसमाज, अकोला)

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का समय महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकारों ने इसे पुनर्जागरण काल कहा है। इस काल में अनेक महापुरुष इस धरा पर अवतीर्ण हुए, जिन्होंने नवजागरण का शंख फूंका। ऋषि दयानन्द इन्हीं में से एक महान् प्रतिभा-सम्पन्न महापुरुष थे, जिन्होंने धर्म, समाज, संस्कृति तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में नवचेतना का संचार किया। भारत के पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के संदर्भ में उनकी गौरवशालिनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत के पुनरुत्थान और विश्व मानवता के कल्याण की योजना प्रस्तुत करने वाले एकमात्र महापुरुष महर्षि दयानन्द ही थे। वे वेदशास्त्रों के गंभीर विद्वान्, महान सुधारक, राष्ट्रवादी तथा प्रगतिशील चिन्तक थे। उनका साहित्य भी विशाल, महान् तथा उच्च कोटि का है। वे अपने आप में एक संस्था थे। उन्होंने जीवन के इतने पक्षों पर अतुलनीय कार्य किया है, जो कई व्यक्ति भी मिलकर नहीं कर सकते। तत्कालीन भारत में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में वे सफल हुए। उन्होंने देश, समाज तथा विश्व मानव की सभी समस्याओं तथा प्रश्नों का सतर्क समाधान समग्र दृष्टि से प्रस्तुत किया। अने नवजागरण-आन्दोलन का नेतृत्व उन्होंने भारतीय तत्वचिन्तन तथा वैदिक दर्शन के आधार पर किया।

ऋषि दयानन्द के कार्यों पर दृष्टि डालने से पूर्व उस समय के भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा को जानना जरूरी है। इस समय तक भारत राजनैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर विघटित और मूल्यों की दृष्टि से खोखला हो चुका था। 1857 का स्वाधीनता-संग्राम असफल हो जाने पर, भारत में अंग्रेजी शासन की नींव पहले की अपेक्षा और भी सुदृढ़ हो गई थी। शताब्दियों की राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता, अज्ञानता, दरिद्रता, हीनभावना जैसे विकारों में डुबो रखा था। प्राचीन वैभव दुर्दिन के कालावरण से धूमिल था। धर्म की जगह अंधविश्वास, नैतिकता के नाम पर थोथा कर्मकाण्ड और रूढ़ियों से ग्रस्त भारत का समाज बना हुआ था। अज्ञान, अशिक्षा का साम्राज्य था। वेदों का सत्य स्वरूप सघन अंधकार में विलुप्त हो चुका था। भारत की राजशक्ति व क्षात्रबल एक विदेशी जाति के सम्मुख परास्त हो गए थे। अंग्रेजों के आर्थिक षड्यंत्रों तथा शोषण ने भारत के उद्योगों और कृषि को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया था। भारत में भारतीयों को आजीविका कमाना कठिन हो गया था। फलतः कम मजदूरी दर पर मारीशस, त्रिनिदाद ब्रिटिश उपनिवेशों में उन्हें ले जाया गया, जहाँ वे गुलामों का जीवन व्यतीत करने पर विवश थे। उस समय की दयनीय आर्थिक दशा ने भारत को निहायत कमजोर कर दिया था। इसी प्रकार धार्मिक दृष्टि से भी हिन्दू धर्म पूर्ण विश्रंखलित था। अनेक मतमतान्तरों का प्रचलन था। एक सर्वमान्य धर्मग्रन्थ के अभाव में तथा विश्व की सर्वोच्च शक्ति के स्वरूप के विषय में एकमत्य न होने के कारण, उन्नीसवीं सदी का हिन्दू धर्म मत-मतान्तरों का समुच्चय मात्र था। विभिन्न संप्रदायों के मन्तव्य, सिद्धान्त और अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, वास्तविक वैदिक धर्म से भिन्न तो थे ही, उनमें ऐसे अन्धविश्वास, विकृतियों का समावेश भी था, जो कलंक था। इसी प्रकार भारत की सामाजिक अवस्था भी बहुत ही खराब थी। जाति-पाति, ऊँच-नीच, छूत-अछूत के विचार भारतीय समाज को घुन की तरह खा रहे थे। जात-पात के इस विकृत स्वरूप के कारण हिन्दुओं को एक जाति नहीं कहा जा सकता था। उनका निर्माण ऐसी बहुत-सी जातियों व उपजातियों से मिलकर हुआ था, जिनमें न

thearyasamaj.org

एकानुभूति थी, न परस्पर व्यवहार था और न जिनके लोग एक साथ मिलकर उठ-बैठ सकते थे। स्त्रियों की दशा भी कम शोचनीय नहीं थी। उनके लिए विद्या के द्वार बन्द हो चुके थे। कुछ अपवाद को छोड़ कर स्त्रियाँ प्रायः निरक्षर हुआ करती थीं। पर्दे की प्रथा उत्तर भारत में सर्वत्र प्रचलित थी। बाल-विवाह भारत के सभी धर्मों तथा जातियों में हो रहे थे। विधवा विवाह निषिद्ध था। उधर सती प्रथा भी अभिशाप बनी हुई थी। कितनी ही विधवाओं को पति के साथ जबरदस्ती जला दिया जाता था।

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के भारत की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा समाजिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। एक धर्म, एक भाषा तथा एकसूत्रता का तार सर्वथा छिन्न-भिन्न था।

इसी पृष्ठभूमि पर ऋषि दयानन्द ने जो नवजागरण का शंख फूंका, उससे वे मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सफल हुए। उनके संदेश से भारत ने करवट ली तथा जागृत हुआ। मृतप्रायः हुई भारतीय जनता को गौरव और स्वाभिमान से जागृत करते हुए, उन्होंने बताया कि आपका यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। आपका नाम आर्य है, जिसका मतलब उत्तम पुरुष है। सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्त्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अब अभाग्योदय से विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने प्राचीन भारत की गौरव-गरिमा, पूर्वजों, ऋषि-महर्षियों, चक्रवर्त्ती सम्राटों की झलक दिखाकर भारतीय सन्तति को, जो सिर झुका कर जी रही थी, स्वाभिमान से खड़ा कर दिया। साथ ही, विधर्मियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दे कर, उनके छक्के छुड़ाने के साथ, उन्हें आर्यधर्म की श्रेष्ठता का भी कायल बना दिया। उन्होंने निर्भीक घोषणा की कि वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है और विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान वेद-मार्ग पर चल कर ही संभव है। विश्रृंखलित हिन्दू समाज को उद्बोधित किया कि वे वेद को अपना धर्मग्रंथ मानें और ओम् नाम से विश्व की सर्वोच्च शक्ति परमेश्वर का स्मरण करे। ओम् और वेद के आधार पर हिन्दूधर्म के सब संप्रदायों को एक सूत्र में संगठित किया जा सकता है। उन्होंने वेदों को सब सत्य विद्याओं का ग्रंथ प्रतिपादित किया और उनके पठन-पाठन पर अत्याधिक जोर दिया। इस प्रकार भारतीय समाज को एक ठोस व सुदृढ़ आधार पर स्थापित करने का एक क्रियात्मक उपाय प्रस्तुत कर दिया।

भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने के लिए उन्होंने विशिष्ट ढंग से कार्य किया। उनके द्वारा प्रशस्त पथ पर ही राष्ट्रीय क्रान्ति का रथ आगे बढ़ पाया। ऋषि दयानन्द ने स्वराज्य, साम्राज्य और सार्वभौम चक्रवर्त्ती राज्य की चर्चा उस समय की, जबकि स्वराज्य का विचार भी किसी के दिमाग में पैदा नहीं हुआ था। लाखों लोगों के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने अभूतपूर्व क्रान्ति की।

उन्होंने रूढ़िग्रस्त जाति-पाति का विरोध करते हुए बताया कि वर्ण-व्यवस्था गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार समाज का विभाजन है। जिस-जिस व्यक्ति में जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म हों उसको उस-उस वर्ण का अधिकार देना चाहिए, चाहे उसका जन्म किसी भी कुल में हो। विद्या और धर्म प्रचार का काम ब्राह्मण का है, क्योंकि वे पूर्णतः विद्यावान और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रिय को अधिकार देने से राज्य की हानि या विघ्न नहीं होता। उद्योग, कृषि व्यापार वैश्यों के अधिकार में देने-से, वे इस काम को अच्छी प्रकार कर सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने शूद्र वर्ण में उन लोगों को रखा है, जो शिक्षा का समुचित अवसर प्राप्त करके भी अयोग्य रह जाएँ। उनके अनुसार सबको शिक्षा का समान अवसर मिलना चाहिये। सेवा का अधिकार शूद्र को है, क्योंकि वह विद्यारहित होने से विज्ञान-सम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के सब काम कर सकता है। शूद्रों के विषय में ऋषि दयानन्द ने लिखा है- "शूद्र सब सेवाओं में चतुर, पाक विद्या में निपुण, अतिप्रेम से सेवा कार्य करें और

thearyasamaj.org

उसी से अपनी आजीविका करें, और अन्य वर्णस्थ लोग उनके खान-पान, वस्त्र, स्थान विवाहादि में जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें।'' जिस रूप में ऋषि दयानन्द ने चातुर्वर्ण्य का प्रतिपादन किया हे, उसमें छुआछूत का कोई स्थान नहीं है।

स्त्रियों की दशा सुधारने में भी ऋषि दयानन्द ने भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने न केवल स्त्रियों को अध्ययन का अधिकार दिलाया, वरन् वेदाधिकार से भी उन्हें गौरवान्वित किया। उनका कहना था- "स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी पूज्य है।"

ऋषि दयानन्द ने स्त्रीशिक्षा, शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली और देश को एक राष्ट्रभाषा के रूप में देवनागरी में लिखित हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का युगप्रवर्तक घोष किया। वे हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहते थे। आधुनिक युग में केवल ऋषि दयानन्द सरस्वती ने ऐसी शिक्षाप्रणाली का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार शिक्षा प्राप्त कर भारतीय विद्यार्थी जहाँ नए ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकता था, साथ ही अपनी भाषा, संस्कृति और धर्म का पूरा ज्ञान प्राप्त कर भारतीयता पर गौरव कर सकता था। पठन-पाठन विधि में ऋषि दयानन्द ने पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीखने, बीजगणित, अंकगणित, भूगोल, खगोलविद्या का ज्ञान प्राप्त करने और यन्त्रकला एवं शिल्प आदि का अभ्यास कराने की व्यवस्था दी है। ऋषि दयानन्द ने विभिन्न विषयों के साथ सदाचार, विद्यानुराग, शिष्टाचार जैसे सद्‌गुणों को संगीत आदि ललित कलाओं, शरीर-विज्ञान, पदार्थ विज्ञान आदि विज्ञानों, कला कौशल और राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्‌भावों को समुचित स्थान दिया है। शिक्षा जगत में उस समय यह एक महती क्रान्ति थी।

ऋषि दयानन्द ने विश्व कल्याण की योजना बनाई 'वेद' के आधार पर, किन्तु 'वेद' के आधार पर एक बृहत संस्कार व सुधार की योजना को कार्यान्वित करने से पूर्व उनके वास्तविक स्वरूप को, उनके अर्थ को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक था, जो ऋषि दयानन्द ने कर दिखाया। उन्होंने बताया कि, वेद समस्त आध्यात्मिक व भौतिक विद्याओं का मूल है। वेदों के ज्ञान का प्रकाश सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार ऋषियों के अन्तःकरणों में मानवमात्र के ज्ञान व कल्याण के लिये किया गया। सर्वज्ञ परमात्मा का ज्ञान होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं। उनमें सारा ज्ञान-विज्ञान बीज रूप में विद्यमान है। उनके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों के मार्ग पर चलना चाहिए, जिनके आधार पर प्राचीन ऋषियों ने सत्यों की खोजें की।

वेद सार्वजनिक हैं, सार्वभौमिक हैं। उनमें किसी व्यक्ति, देश, जाति तथा काल का इतिहास नहीं है। वैदिक संस्कृति सार्वभौम संस्कृति है, इसे भारतीय संस्कृति तो इसलिए कहते हैं क्योंकि भारत के लोगों ने इस संस्कृति की विशेष रूप से रक्षा की है और इसे अपने जीवन में अपनाया है। ऋषि दयानन्द महान् देशभक्त थे और भारत को, आर्यावर्त को अपने प्राचीन गौरवमय स्वरूप में लाने के लिए सतत् प्रयत्नशील थे। वो चाहते थे कि भारत फिर से विश्वगुरु बने, धन-धान्य संपन्न राष्ट्र बने, जो कि पहले सोने की चिड़िया कहलाता था। उन्होंने आर्यावर्त को सच्चा पारसमणि बताया, जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं किन्तु साथ ही उनका उद्देश्य मानवमात्र को श्रेष्ठ व उन्नत बनाने का भी था। उन्होंने आर्यसमाज का उद्देश्य बताते हुए लिखा है– "संसार का उपकार करना, इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।"

निश्चय ही ऋषि दयानन्द, मनु, व्यास, याज्ञवल्क्य और जैमिनी की प्रोज्ज्वल परम्पराओं के प्रस्तोता थे। उन्नीसवीं शताब्दी के महर्षि थे। वे आर्ष धर्मद्रष्टा, अप्रतिम धर्माचार्य और धर्मसंशोधक, महान् समाज-संस्कारक तथा राष्ट्र एवं मानव जाति के सर्वविध मंगल विधायक महापुरुष थे। उनके बताये मार्ग पर चलने से ही देश, समाज तथा विश्व का पूर्ण हित हो सकता है।

❑❑

thearyasamaj.org

आर्य्यावर्त्तीय मतों के खण्डनमण्डन
11वें समुल्लास की महर्षि दयानन्द लिखित महत्वपूर्ण अनुभूमिका"

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्यसमाज की स्थापना की थी। उन्होंने अपनी वेदों पर आधारित मान्यताओं व सिद्धान्तों का बोधक ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" लिखा है, जो विश्व साहित्य में अद्वितीय है। यह एक प्रकार से विश्व में शान्ति का संविधान है। इस ग्रन्थ के 11वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखे गये शब्दों को प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण होने के कारण, ज्ञानार्थ व विचारार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द लिखते हैं- "यह सिद्ध बात है कि (सन् 1875 से) पाच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई मत (संसार में) न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरूद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के (कारण) भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया, वैसा मत चलाया।

उन सब मतों में 4 मत अर्थात् वे क्रम से एक के पीछे दूसरा, तीसरा व चौथा चला है। अब इन चारों की शाखा एक सहस्र से कम नहीं हैं। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सबके परस्पर सत्याऽसत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो, इसलिये यह (सत्यार्थ प्रकाश) ग्रन्थ बनाया है। जो-जो इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है, वह सबको जानना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसे मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है, उसको सबके आगे निवेदन कर देना मैंने उत्तम समझा है, क्योंकि विज्ञान गुप्त (लुप्त व नष्ट) हुए का पुनर्मिलन सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्याऽसत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत को ग्रहण करना ओर असत्य को छोड़ना सहज होगा। इनमें जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा-शाखान्तररूप मत आर्य्यावर्त्त देश में चले हैं, उनका संक्षेप से गुण-दोष इस (सत्यार्थ प्रकाश के) 11वें समुल्लास में दिखाया जाता है।

इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि या विरोध करने में नहीं किन्तु सत्याऽसत्य का निर्णय करने-कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य-जन्म का होना सत्याऽसत्य के निर्णय करने-कराने के लिये है, न कि वादविवाद, विरोध करने-कराने के लिये।

इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे, उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब-तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा, तब तक अन्योऽअन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्याद्वेष छोड़ सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें, तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।

यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोधजाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें, तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश शीर्षक से) इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे। (अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु)

महर्षि दयानन्द द्वारा 11वें समुल्लास में ही भारत के प्रति गौरवगान करते हुए निम्न स्वर्णिम महत्वपूर्ण वाक्य भी लिखे गए हैं :-

शेष पृष्ठ 24 पर

thearyasamaj.org

न्यायदर्शन में हेत्वाभास

(उत्तरा नेरूर्कर, बंग्लौर, मो- 09845058310)

षड्दर्शनों में से एक, न्यायदर्शन का प्रतिपाद्य विषय प्रमाणों द्वारा सत्य का निर्धारण है, जो सत्य मोक्ष के लिए अनिवार्य है, क्योंकि मोक्ष का पथ असत्य से सर्वथा परे है। उसके अन्तर्गत एक विषय हे- हेत्वाभास। हेत्वाभास लगते तो हेतु जैसे हैं, परन्तु वास्तव में, सही होते नहीं हैं- साध्य को प्राप्त कराने में अक्षम होते हैं इनका तर्कों में अत्यधिक महत्व है, क्योंकि जब तक हम हेतु और हेत्वाभास में अन्तर नहीं कर सकते, तब तक हम सत्य तक पहुँच ही नहीं सकते। इस लेख में इन हेत्वाभासों की सोदाहरण चर्चा की गई है। ये उदाहरण महर्षि गौतम द्वारा न्यायदर्शन में दिए हुए तर्कांशों से ही चुने गए हैं।

महर्षि गौतम कहते हैं कि हेत्वाभास पाँच प्रकार के होते हैं-

सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमकालातीता हेत्वाभासाः।। न्यायदर्शनम् 1/2/4।।

अर्थात् हेत्वाभास के प्रकार हैं- सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत। इनकी परिभाषाएं और उदाहरण इस प्रकार हैं-

1) **सव्यभिचार हेत्वाभास-** गौतम परिभाषा देते हैं-

अनैकान्तिकः सव्यभिचारः।। 1/2/5।।

अर्थात् जिस हेतु से केवल एक बात सिद्ध नहीं होती है, अपितु अनेकों निष्कर्ष सम्भव होते हैं, उस को सव्यभिचार हेत्वाभास कहते हैं। इसका उदाहरण महर्षि गौतम ने स्वयं संकेतित किया है- **"व्यभिचारादहेतुः।। 4/1/5।।"** सूत्र में 1 प्रकरण इस प्रकार है-

तथा दोषाः।। तत्त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात्।। 4/1/2-3।।

वादी कहता है, "दोषों के तीन विभाग होते हैं- राग, द्वेष और मोह।"

नैकप्रत्यनीकभावात्।। 4/1/4।।

प्रतिवादी उत्तर देता है, "नहीं, उन तीनों का एक विरोधी (अविद्यानाश) होने से।" अर्थात् क्योंकि राग, द्वेष व मोह- तीनों ही विद्या से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ये तीनों एक ही हैं, तीन नहीं।

व्यभिचारादहेतुः।। 4/1/5।।

तब वादी दिखाता है कि उपर्युक्त हेतु सव्यभिचार है। यह इस प्रकार- आपके कारण के अनेक कार्य सम्भव हैं। सो, यहाँ विद्या कारण है और राग-नाश, द्वेष-नाश और मोह-नाश उसके कार्य हैं। इसलिए उपर्युक्त हेतु तीन कार्यों का प्रतिषेध करने में असमर्थ है।

2) **विरुद्ध हेत्वाभास-** परिभाषा इस प्रकार है-

सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः।। 1/2/6।।

अर्थात् सिद्धान्त को मान लेने के बाद, उसका विरोधी कारण देना विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। इसका संकेत मिलता है हमको- **"दृष्टान्तविरोधादप्रतिषेधः।। 3/1/11।।"** इस प्रकरण में आत्मा के अस्तित्व पर चिन्तन हो रहा है-

वादी कहता है, **"सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्।। 3/1/7।।"** अर्थात् केवल बाईं आँख से देखी वस्तु की पहचान दाईं आँख को होने के कारण, इन दोनों से परे एक आत्मा की सिद्धि होती है।

प्रतिवादी कहता है, **"नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात्।। 3/1/8।।"** अर्थात् नहीं, दोनों एक ही आँख हैं; बीच में नाक की हड्डी आ जाने से ये दो प्रतीत होती हैं।

वादी टोकता है, **"एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम्।। 3/1/9।।"** अर्थात् एक आँख के नष्ट हो जाने पर, दूसरी आँख बनी रहती है; इसलिए दोनों आँखें भिन्न ही हैं।

प्रतिवादी तुरन्त प्रत्युत्तर देता है,

thearyasamaj.org

"अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः।। 3/1/10।।" अर्थात् ऐसा इसलिए होता है कि दोनों आँखें अवयव के समान हैं सो, एक अवयव के नाश होने पर अवयवी का नाश नहीं होता।

तब वादी उसे घेरता है, **"दृष्टान्तविराधादप्रतिषेधः।। 3/1/11।।"** अर्थात् आपके दृष्टान्त से विरोध के कारण, यह प्रतिषेध नहीं है। क्या आपने यहाँ उपर्युक्त हेतु में गड़बड़ी पकड़ी? नहीं? तो यह इस प्रकार है- वादी तो पहले ही कह रहा है कि आत्मा अवयवी है और दोनों आँखें उसके शरीर के अवयव, परन्तु प्रतिवादी ने ही उन दोनों आँखों को एक माना और आत्मा को झुठलाया। सो वहाँ अवयव के स्थान ही कहाँ। उसने अपने माने हुए एकत्व के सिद्धान्त को अवयव-अवयवी का भेद मानकर नकार दिया। यह हुआ विरुद्ध हेत्वाभास।

3) प्रकरणसम हेत्वाभास- परिभाषा है-

यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः।। 1/2/7।।

जिस हेतु के कारण संशय उत्पन्न हुआ और प्रकरण पर चिन्तन आरम्भ हुआ, उसी को निर्णय में परिवर्तित कर देने को प्रकरणसम हेत्वाभास कहते हैं। उस संशयात्मक प्रकरण के बाहर के किसी हेतु से ही निर्णय सम्भव है, अन्यथा नहीं। इसका उदाहरण हमें मिलता है 'अभाव प्रमाण' की प्रामाणिकता की चर्चा पर। वादी कहता है, **"नाभावप्रामाण्यं प्रमेयासिद्धेः।। 2/2/7।।"** अर्थात् अभाव की प्रामाणिकता नहीं है, क्योंकि उसमें प्रमेय सिद्ध नहीं है। मूलरूप से इस वाक्य का स्वरूप है- "न होना सिद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि न होना सिद्ध नहीं है"! इस प्रकार जिसको हम असिद्ध करने निकले, उसको हमने पहले ही असिद्ध मान लिया। यही प्रकरणसम हेत्वाभास है।

4) साध्यसम हेत्वाभास- परिभाषा है-

साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः।। 1/2/8।।

हेतु स्वयं साध्य होने पर उसको साध्यसम हेत्वाभास कहा जाता है। इसका स्पष्ट संकेत हमें मिलता है-

"साध्यसमत्वादहेतुः।। 3/2/3।।"- सूत्र पर। प्रकरण इस प्रकार है। **"कर्माकाशसाधर्म्यात् संशयः।। 3/2/1।।"** सूत्र पर शिष्य संशय करता है कि जिस प्रकार कर्म और आकाश के अस्पर्शत्व धर्म के समान बुद्धि (अर्थात् स्मृति या ज्ञान या पहचान) भी है, तो क्या वह उन दोनों के समान नित्य भी है?- यह संशय होता है। शिष्य अन्य हेतु देता है- **"विषयप्रत्यभिज्ञानात्।। 3/2/2।।"**- किसी पूर्वानुभूत ऐन्द्रिक विषय को पुनः प्राप्त करने पर उसकी पहचान होने से भी बुद्धि की नित्यता प्रतीत होती है।

गुरु इस दूसरे हेतु में दोष बताता है- **"साध्यसमत्वादहेतुः।। 3/2/3।।"**- बुद्धि पिछले अनुभव से ही पहचान कर रही है कि नहीं, अर्थात् नित्य है कि नहीं, यही तो तुम्हारा संशय है। सो उसको हेतु कैसे कह सकते हो?!

5) कालातीत हेत्वाभास- परिभाषा है-

कालात्ययापदिष्टः कालातीतः।। 1/2/9।।

हेतु में काल के अतिक्रमण होने पर, वह कालातीत हेत्वाभास कहा जाता है। इस हेतु को समझना थोड़ा कठिन है क्योंकि इसकी कुछ गलत व्याख्याएँ की गई हैं। सो, कइयों ने माना है कि समय पर हेतु न दे सकना कालातीत हेत्वाभास है। परन्तु, हेत्वाभासों में समय का प्रतिबन्धन नहीं हो सकता। ये वाद के अंश अवश्य हैं, जहाँ पर, सभा में बैठ कर, पक्ष-प्रतिपक्ष अपने-अपने मतों का बचाव करते हैं; परन्तु ये तर्क के भी अंश हैं, जहा सत्य के निर्णय के लिए हेतु दिए जाते हैं। वाद के सन्दर्भ में इसे 'अननुभाषण निग्रहस्थान' कहा जाता है। परन्तु, सत्य के निर्णय में समय का प्रतिबन्धन नहीं होता।

यहाँ वात्स्यायन की व्याख्या में हमें उत्तर मिलता है। वे उदाहरण इस प्रकार देते हैं- पूर्वपक्षी कहता है, "शब्द नित्य है, संयोग से व्यक्त होने के कारण, रूप के समान।" अर्थात् जिस प्रकार किसी विद्यमान् वस्तु के रूप का ज्ञान उसका प्रकाश से संयोग होने पर होता

thearyasamaj.org

है, उसी प्रकार शब्द का ज्ञान डण्डे का नगाड़े से संयोग होने पर होता है। जिस प्रकार रूप पहले से विद्यमान् था, उसी प्रकार शब्द भी पहले से विद्यमान था। तो सिद्धान्ती कहता है, "यह कालातीत हेत्वाभास है क्योंकि रूप उतनी देर ही प्रकाशित होता है, जितनी देर उसका प्रकाश से संयोग होता है; परन्तु डण्डे और नगाड़े के संयोग के बाद भी शब्द का ग्रहण होता रहता है। इसलिए रूप की उपमा शब्द के लिए सही नहीं है। शब्द की अभिव्यक्ति संयोग-काल का अतिक्रमण करती है।" यह काल का अतिक्रमण होना है अर्थात् कालातीत हेत्वाभास है।

इस अर्थ के अनुसार जब हम गौतम के तर्कों को परखते हैं, तो हमको उदाहरण मिलता है-

शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः।। 2/1/55।।

शब्द और अर्थ के स्वाभाविक या नित्य सम्बन्ध पर चर्चा करते हुए, उपर्युक्त वाक्य में पूर्वपक्षी कहता है कि, लोक में, शब्द और अर्थ की व्यवस्था देखे जाने से, (शब्द और अर्थ के बीच के सम्बन्ध का जो आपने पूर्व सूत्र में प्रतिषेध द्वारा कहा, वह) प्रतिषेध सही नहीं है।

सिद्धान्ती उत्तर देता है,

"न, सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य।।

2/1/56।।"

अर्थात् शब्द और अर्थ का ज्ञान सामयिक होने के कारण आपका प्रतिषेध सही नहीं है। अलग-अलग कालों में शब्दों और उनके अर्थों में भेद आता रहता है- कभी 'गौ' कहे जाने वाला पशु आज 'गाय' कहलाता है, आदि, आदि। इस प्रकार शब्द के अर्थ ने काल का अतिक्रमण कर दिया। यह कालातीत हेत्वाभास है।

इस विश्लेषण से हम देख सकते हैं कि न्यायदर्शन के सिद्धान्त उस ग्रन्थ में ही उदाहरण हैं। ऐसा जानकर हम यदि ग्रन्थ को पढ़ेंगे, तो उसके सिद्धान्तों का सत्य के अन्वेषण में सही-सही प्रयोग कर पायेंगे।

विश्लेषण से यह भी ज्ञात होता है कि तर्कविद्या प्राचीन भारत में कितनी विकसित थी। मुझे लगता नहीं कि इतना उत्कृष्ट विवेचन आज भी कहीं उपलब्ध होता है। उदाहरण-स्वरूप, पाश्चात्य सभ्यता में केवल प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों को माना जाता है; उपमान प्रमाण की उपेक्षा की जाती है और शब्द प्रमाण को प्रमाण-स्वरूप माने बिना स्वीकारा जाता है। अवश्य ही, नैयायिकों को प्रमाणों, हेत्वाभास, जाति, आदि की नव्य-नयाय की लम्बी-लम्बी परिभाषाओं से आगे बढ़कर, उनको न्यायदर्शन के उपकरणों के रूप में प्रयोग में दर्शाने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल 'वह्निमानू पर्वतः, घटाभावः' आदि पुराने उदाहरणों को दोहराने से शिष्य का सामर्थ्य नहीं बढ़ सकता। सत्य के स्थापन में उन उपकारणों की उपादेयता को भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में सिद्ध करना चाहिए।

❑❑

पृष्ठ 21 का शेष

"यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। इसलिये हम सृष्टि विषय (सत्यार्थ प्रकाश का आठवां समुल्लास) में कह आये हैं कि आर्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण; अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

हम आशा करते हैं कि पाठक महर्षि दयानन्द के इन निष्पक्ष एवं उपादेय विचारों को पसन्द करेंगे।

❑❑

thearyasamaj.org

हिन्दू धर्म की महानता पर 'अंधविश्वास का साया'

(शांता कुमार)

पिछले दिनों केरल की राजधानी त्रिवेंद्रम जाने का मौका मिला। किसी ने आग्रह किया कि यहाँ एक प्रसिद्ध मंदिर पद्मनाभन है, उसके दर्शन अवश्य करने चाहिए। मैंने भी मान लिया। शाम को वह सज्जन मेरे कमरे में एक धोती लेकर आए और कहा कि मंदिर में धोती लगाकर जाने का नियम है। अच्छा तो नहीं लगा, पर मैंने मान लिया। सुबह जब मंदिर के द्वार पर पहुँचे तो कहा गया कि कमीज और बनियान भी उतार कर मंदिर में जाने नियम है। मैंने पूछा क्या कमीज-बनियान उतार कर मैं अधिक पवित्र हो जाउँगा। भगवान के घर में इस प्रकार के नियम मुझे समझ नहीं आए। मैंने कहा भी कि क्या कपड़े उतारने से कोई पवित्र होता है! कर्म भले कैसे ही करता हो? यह नियम मेरी समझ में नहीं आया। मित्रों ने आग्रह किया, पर मैं स्वीकार नहीं कर सका और भगवान के दर से दर्शन किए बिना ही वापस आ गया।

(इस देश में ईश्वर के नाम पर पाखण्ड और धर्म के नाम पर अधर्म ही अधिक होता दिखाई दे रहा है। कारण-हमारी अज्ञानता। परमात्मा हमें सद्बुद्धि दें। आश्चर्य तो इस बात का है कि हम इतिहास से भी कुछ सीखने को सहमत नहीं हैं। अन्यथा क्या कारण है कि सोमनाथ जैसी घटना के बाद भी हम आज तक मूर्ति को ईश्वर माने बैठे हैं। इस मूर्ति पूजा ने देश का नाश किया है और दुर्भाग्य ये है कि अभी भी इस पिशाचनी से पीछा नहीं छूटा और न छूटने की कोई उम्मीद दिखाई देती है। सम्पादकीय टिप्पणी)

बहुत देर सोचता रहा। ये सारे व्यर्थ कर्मकाण्ड धर्म के नाम पर इस देश में सदियों से हो रहे हैं। इसका कितना बड़ा मूल्य देश को चुकाना पड़ा है। गुलामी के कारण पतन नहीं हुआ बल्कि पतन के कारण गुलामी आई। वास्तव में यह अंधविश्वास और कुरीतियाँ ही थीं, जिस कारण भारत का पतन हुआ। छुआछूत को धर्म मान लिया गया। अपने ही समाज के लाखों-करोड़ों लोगों को दलित कहकर अपमानित किया गया। ऐसे अपमानित लोग ही धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान बने और बाद में मातृभूमि का बंटवारा हुआ और पाकिस्तान बना। सच्चाई कड़वी है पर सच्चाई यही है कि पाकिस्तान जिन्ना ने नहीं बनाया, उन कोरे कर्मकाण्डी तथाकथित ब्राह्मणों ने बनाया, जिन्होंने धर्म के नाम पर करोड़ों हिन्दुओं को तिरस्कृत व अपमानित किया और दलित बनाया। बाद में उसी वर्ग से लाखों लोग ईसाई बने।

लम्बे इतिहास में स्वामी विवेकानन्द से लेकर दयानंद और कबीर-बहुत से महापुरुष व संत आए। बहुत समझाया परन्तु दुर्भाग्य से देश अभी तक भी पूरी तरह से समझ नहीं पाया है। वेद उपनिषद् और वेदांत के महान आध्यात्मिक ज्ञान से सम्पन्न हिन्दू धर्म व्यर्थ के कर्मकाण्ड व कुरीतियों में उलझता रहा है। स्वामी विवेकानंद ने तो क्रोधित होकर यहाँ तक कह दिया था-धर्म संकुचित हो गया है। अधिकांश मनुष्य इस समय न तो वेदांति हैं न पौराणिक। हम केवल 'मत छुओ वादी' रह गए। धर्म चूल्हे में घुस गया। भात की हांडी हमारा ईश्वर है और धर्म है- 'हमें मत छुओ, हम पवित्र हैं' यदि यही भाव एक सदी तक और चलता रहा, तो हर एक का स्थान पागलखाने में होगा।

पिछले वर्ष एक संसदीय कमेटी के साथ एक और मंदिर में जाने का मौका मिला। रास्ते में एक प्रबंधक ने कहा कि आपके साथ एक मुस्लिम सदस्य हैं, उन्हें

thearyasamaj.org

मंदिर के बाहर ही बैठना पड़ेगा। मैं चलते-चलते रुक गया और उन्हें कहा कि मंदिर में दर्शन करने जाएंगे, तो सभी सदस्य इकट्ठे जाएंगे। यदि भगवान के घर में हिन्दू-मुस्लिम का भेदभाव है, तो वहाँ मैं कभी नहीं जाऊंगा। साथ चल रहे प्रमुख अधिकारी परेशान हुए। कुछ समय बाद एक अधिकारी ने कहा कि चिन्ता मत करें हमने सब प्रबंध कर लिया है। मंदिर के द्वार पर पहुँचे जहाँ पुजारी लेने के लिए खड़े थे, तो उसने उस मुस्लिम सदस्य को पुकार कर कहा चिन्तामणि जी! आप इधर आ जाएँ। नाम बदलकर सबको दर्शन करवा दिए। दर्शन तो कर लिए, पर मंदिर के उस नियम से मेरा मन बहुत दुःखी हुआ।

भारत में चारों तरफ उपदेश, प्रवचन, स्वामी और कई प्रकार के बाबे घूमते नजर आते हैं। बहुत कम सच्चे धर्म वेदांत की बात करते हैं। कोई बीज मंत्र से कैंसर का उपचार करने का दावा कर रहा है, कोई निर्मल बाबा ऊटपटांग बातों में उलझा रहा है। हरियाणा में संत रामपाल क्या गुल खिलाता रहा है। समझ नहीं आता कि हजारों-लाखों की भीड़ इन बाबाओं के पीछे क्यों घूमती है। विश्व में और कोई देश नहीं है, जहाँ इतने प्रवचन, कुंभ, महाकुंभ, जगराते और न जाने धर्म पर कितने कार्यक्रम होते हैं, परन्तु इस सबके बावजूद भारत में भयंकर गरीबी है और भारत दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों में गिना जाता है। धर्म के नाम पर होने वाले इतने सारे कार्यक्रम मनुष्य के मन को निर्मल, पवित्र और ईमानदार क्यों नहीं बनाते? एक बार आचार्य रजनीश को किसी ने यही सवाल किया था कि जिस देश में धर्म के नाम पर इतना कुछ होता है, उस देश में इतना अधिक भ्रष्टाचार क्यों हैं? आचार्य रजनीश ने उत्तर दिया था- क्योंकि भारत में गंगा बहती है। सुनने वाले हैरान रह गए। तब समझाते हुए आचार्य रजनीश ने कहा था कि एक दिन गंगा-स्नान करके अधिकतर लोग सोचते हैं कि उनके 364 दिनों के सारे पाप धुल गए और उसके बाद फिर से जिन्दगी उसी रास्ते पर चलने लग पड़ती है। वास्तव में अधिकतर लोग पाखंडी हो गए। कथनी और करनी में अंतर हो गया, दिखावा और नाटक बहुत हो गया।

इस सबका एक कारण भौतिकवादी सोच के कारण उत्पन्न अति महत्वाकांक्षा भी है। पद व पैसे का लालच एक पागलपन बन गया है। लोग एकदम करोड़पति बनना चाहते हैं। पारिवारिक रिश्तों की पवित्रता भी तार-तार हो रही है। सम्पत्ति के लिए माँ, पिता व बेटों में क्या कुछ हो रहा है।

ऊँचे पदों पर पहुंचना चाहते हैं, जो मिला है, उसमें कोई संतुष्ट नहीं। जितना अधिक मिलता है, उतनी भूख और बढ़ती जाती है। ऐसे ही लोग इन बाबाओं के पीछे घूमते हैं। धर्म के नाम पर होने वाले सारे पाखण्डों में शामिल होते हैं। हर बाबा के पास भीड़ जुट जाती है।

भारत में मंदिर भी बढ़ रहे हैं और मंदिरों में भीड़ भी बढ़ रही है। भीड़ में भगदड़ की दुर्घटनाएँ भी बढ़ रही हैं। इस भीड़ में भक्त कम, भिखारी अधिक होते हैं जो कुछ न कुछ माँगने के लिए जाते हैं। लाखों-करोड़ों रुपए का चढ़ावा चढ़ाने वालों में बहुत से बदले में कुछ माँगते हैं। यह पूजा नहीं केवल एक धंधा है। भारतीय चिन्तन में भक्त भगवान के पास जाकर केवल आभार प्रकट करता है। जो मिला है उसके लिए संतोष प्रकट करता है। माँगता कुछ नहीं। क्या भगवान को पता नहीं है कि किसे क्या मिलना चाहिए? परन्तु मंदिरों के बाहर भीड़ में आभारी बहुत कम होते हैं, लगभग माँगने वाले भिखारी ही होते हैं। इस महत्वाकांक्षा के पागलपन को राजनीति ने भी बहुत बढ़ाया है। बहुत से नेता कल विधायक और परसों मुख्यमंत्री बनना चाहते हैं। जैसे-तैसे

thearyasamaj.org

पदों से चिपके रहना चाहते हैं। एक पूर्व मुख्यमंत्री रात के अंधेरे में श्मशानघाट में नंगे होकर पूजा करते सुने गए। एक नेता ने तांत्रिक के कहने पर एक साल काला कुत्ता रखा। एक नेता रात को नंगे सोते रहे। एक ने गधे की बलि दी। काँगड़ा का उजड़ा बगलामुखी मंदिर देश भर के नेताओं के तांत्रिक पूजा का केन्द्र बन गया। अब खूब रौनक रहती है।

दुनिया में सिंगापुर जैसे छोटे-छोटे देश स्वाभिमान और खुशहाली का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वहाँ प्रवचन नहीं होते, कुंभ नहीं होता। धर्म के नाम पर कोई ढोंग पाखंड नहीं होता, लोग काम को ही पूजा समझते हैं और ईमानदारी के साथ देश के लिए जीते हैं। भारत में उपदेश, प्रवचन, स्नान व कुंभ की कल्पना तन, मन की शुद्धि के ए की गई थी। उससे आध्यात्मिक प्रेरणा मिलता थी। अब यह रस्म बन गई पिछले पाप धोकर नए करने का लाइसैंस लेने का तरीका बन गया। बड़े-बड़े मंदिरों में जो करोड़ों रुपया चढ़ाया जाता है, उसमें से अधिकांश काला धन होता है, जो काली कमाई से कमाकर एक हिस्सा भगवान को दे दिया जाता है।

हिन्दूधर्म के लिए आज भी कुछ संस्थाएँ विश्व हिन्दू परिषद्, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, पतंजलि योग, आर्ट ऑफ लिविंग आदि बड़े सराहनीय, सार्थक व रचनात्मक काम कर रही हैं। उन्हीं के प्रयत्नों से आज भी हिन्दूधर्म विश्व में अग्रणी है। इन संस्थाओं को ढोंगी बाबाओं व तथाकथित प्रचारकों से धर्म की

दयानन्द सन्देश के स्वामित्व आदि का विवरण

1.	प्रकाशन स्थान	:-	427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006
2.	प्रकाशन अवधि	:-	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:-	तिलक प्रिटिंग प्रेस, 2046, बाजार सीता राम, दिल्ली-6
4.	प्रकाशक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	2 एफ, कमलानगर, दिल्ली-110007
5.	सम्पादक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	2 एफ, कमलानगर, दिल्ली-110007
6.	स्वामित्व	:-	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट 427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-110006

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखा समस्त विवरण सत्य है।

मार्च, 2015

धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक/सम्पादक)

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/३/२०१५
भार- ४० ग्राम

मार्च 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु. प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु. प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.	प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में ....
ग्राम ....
डा0 ....
जिला ....

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६

thearyasamaj.org